जमीन का टुकड़ा

[कहानी संग्रह]

प्रीतमसिंह पंछी

नवयुग प्रकाशन दिल्ली

मूल्य	: दो रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक	: नवयुग प्रकाशन २८१, चावड़ी बाजार, दिल्ली
मुद्रक	: सिक्सम प्रेस दिल्ली ।

अनुक्रमणिका

बहन रामेश्वर कौर के नाम

"जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मन्दिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहाँ तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्हों ने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान ली हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि सभी हमारे पैर चूमेंगी। फिर मान प्रतिष्ठा की चिन्ता हमें क्यों सताये? और उसके न मिलने से हम निराश क्यों हों? समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रौब जमाने की हविस क्यों हो?

जो आदमी सच्चा कलाकार हैं, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता।"

—प्रेमचंद

घुँघरू

दूसरे महायुद्ध के दिन थे। आषाढ़ का महीना लग चुका था। बाहर खेत खलियानों में काम का जोर था, लेकिन आदमी इस बार ढूँढे नहीं मिलते थे। गांव के नौजवान सेना में भरती करके समुद्र पार भेजे जा रहे थे। सारा गांव उदासी और सूनेपन के घुंघलके में खो सा गया था। हालांकि हमारे आंगन में खड़े पेड़ के जामुन पककर काले स्याह पड़ चुके थे लेकिन इस बार मेरा जामुनों की ओर ध्यान नहीं गया और न ही मैं पहले की तरह अड़ोस-पड़ोस के लड़के-लड़कियों को जामुन तोड़ने के लिए बुलाने ही गया। दरअसल अब मैं बचपन की मंजिल पार करके जवानी में पैर रख रहा था। मुझे नयी नयी बातें अपनी ओर आकर्षित करने लगी थीं। हमारे गांव के लोग दुनियाँ भर में फैले थे और रौनकी डाकिया की दोस्ती ने मेरा सम्बन्ध सारी दुनियाँ से जोड़ दिया था।

मुंडेर पर जैसे ही कौवे ने काँव काँव की रट लगानी शुरू की वैसे ही मैं रोटी के कौर थाली ही में छोड़ कोठे की छत पर चढ़ आया। माँ पुकारती ही रह गयी···मेरे चांद बेटे, रोटी तो खाता जा, मेरे लाल, अब तू बच्च नहीं है। रौनकी आता ही होगा। घुँघरुओं की आवाज तो आने दे।

लेकिन मैंने सदा की भाँति माँ की बात अनसुनी कर दी। मां के यह वाक्य सुनते-सुनते मेरे कान अभ्यस्त हो गये थे। कौवे का शोर सुनते ही मैं कोठे की छत पर चढ़ जाता और ऐड़ियाँ उठा उठा कर रौनकी डाकिये की बाट देखा करता था। जैसे ही मैं ऊपर छत पर आकर खड़ा

होता तो घुँघरुओं की आवाज़ से मेरे दिल के तार बज उठते और शरीर में एक झरनाहट सी फिर जाती। रौनकी डाकिया आ रहा होता। घरों से बाहर निकल द्वार पर खड़ी उसकी राह ताकती माताओं को सदूर के देशों में रोज़ी की खातिर गये अपने बेटों, पत्नियों को अपने पतियों और बहनों को अपने भैय्यों की चिट्ठियों का इन्तजार होता और वे बड़े ही उत्कंठित स्वर में दहलीज़ के बाहर आकर उससे पूछतीं—रौनकी, हमारी कोई चिट्ठी तो नहीं है।—

—नहीं है कर्मावालियो!—यह संक्षिप्त सा उत्तर सुनकर वे अपना रोज़मर्रा का अगला वाक्य दुहरातीं—फिटे-मुंह इन डाकों के, चीटियों की तरह रींगती हुई ये डाकें चलती हैं फिर चिट्ठियां पहुँचने में महीनों लग जाते है। आखिर उन्हें इस बात पर संतोष करके चुप रह जाना पड़ता कि लड़ाई का ज़माना है, चिट्ठी आने-जाने में देर-सवेर हो ही जाती है।

फिर बड़ी उम्र की औरतें रौनकी से ठठोलियां करने लगती। और कोई सास अपनी बहू को कहती हुई सुनाई पड़ती—जा री, रौनकी के लिए जल्दी से काढ़नी से एक कटोरा दूध निकाल ले आ। बेचारा पांच गाँवों की परिक्रमा करता हुआ चला आ रहा है।—

रौनकी लोगों की इन बातों के पीछे छुपी भावनाओं को भली प्रकार समझता था। और उसके स्वयं के दिल में भी कभी किसी की चिट्ठी न आने पर एक टीस सी उठती थी। जैसे वह चाहता हो कि सब की चिट्ठयां रोज रोज आएं और किसी को कभी··निराश न होना पड़े।

कल रौनकी ने मुझ से विलायत के लोगों की नयी नयी बातें सुनाने का वायदा किया था। और उसने बताया था कि साधू सिंह नम्बरदार के बेटे जोगिन्दर सिंह ने वहाँ एक गोरी मेम से बयाह कर लिया था। गांव के सारे पत्र रौनकी स्वयं ही पढ़कर सुनाया करता था। यद्यपि

बहुत से पढ़े लिखे नौजवान सेना में भरती हो गये थे मगर फिर भी गांव में कुछ पढ़े-लिखे लोग अब भी मौजूद थे। पर उन्हें अपनी पढ़ाई का इतना घमंड था कि वे रोज रोज पत्र पढ़कर सुनाना अपनी हेटी समझते थे। अतः यह काम रौनकी को ही करना पड़ता था। उसे पांच गाँवों में डाक बांटने के लिए जाना पड़ता था और उन गांवों में भी ऐसा ही होता था। पत्रों की जो बात उसके दिल को छू जाती थी,वह उसे पल्ले बांध लेता और घर आकर अपनी कापी में उतार लेता था। ऐसे उसके पास अनगिनत कहानियों का जखीरा जमा हो गया था। फिर एक एक करके मुझे सुनाया करता था। कल वह ऐसा वायदा करके गया था। और आज उसकी बाट देखते हुए मेरे पैर मुन्डेर पर टिकते ही न थे। नाईयों के घरों की तरफ के मोड़ पर नज़रें गढ़ाए मां ने जब मुझे देखा तो बोली—बेटा मुन्डेर पर से जरा परे हट कर खड़ा हो, कहीं तू गिर न पड़े। रौनकी आता ही होगा। तुझे इतनी कड़ी धूप में भी चैन नहीं है लाल

लेकिन घूँघरूओं की आवाज नहीं ही आई। धूप में खड़े होने के कारण मेरे शरीर से पसीना चू रहा था। सूर्य की गर्मी से आखें जलने लगी थीं। दिल में आशंका के कई भाव उमड़ने लगे थे। और आँगन में खड़े जामुन के पेड़ पर बैठे पंछी गर्मी के प्रकोप से बचने लिए पत्तों की ओट में सिमटे बैठे थे।

माँ किसी पड़ौस के घर में चली गई थी। गांव के बाहर रेत के टीलों पर से बगूले उड़ने लगे थे और गर्म लू चलने से मेरा सिर चकरा गया था। लू का सनसनाता हुआ एक ऐसा तेज झोंका आया कि मैं अपने को वश में न रख सका और मेरे कदम लड़खड़ा गये, दूसरे क्षण एक जोरदार चीख सुन कर पड़ोसी भागे-भागे आये तो मैं अपने घर की दीवार के साथ बेहोश पड़ा था। यह बात सारे गांव में फैलते देर नहीं लगी।

माँ ने उसी वक्त मौजू चमार को साधुसिंह नम्बरदार की घोड़ी देकर रौनकी के गांव कूम को उसका पता लगाने के लिए दौड़ाया। सुबह का गया दिनके तीसरे पहर मौजू जब अकेला लौट आया तो माँ को कुछ खटक सा हो गया। मौजू पसीने से नहाया हुआ घोड़ी की काठी उतार रहा था कि सहसा माँ की ओर मुड़ा और बोला—

रौनकी बीमार है, वह ज्वर से बेहोश पड़ा है। अगर वह थोड़ा सा भी होश में होता तो मैं उसे घोड़ी पर बैठाकर किसी तरह ले ही आता।

उस समय मैं होश में था। मौजू की बात मेरे कानों में भी पड़ी और पीड़ा से कराह उठा। चोट बायीं जांघ पर लगी थी और एक हड्डी चटख गयी थी। माँ ने समझा कि मैंने मौजू की बात सुनी नहीं है। वह मेरे निकट आकर साँत्वना के स्वर में बोली—

—रौनकी किसी सरकारी काम की वजह से रुक गया है। उसने मौजू से कहला भेजा है कि तू चल, मैं तेरे पीछे-पीछे आता हूँ—

—'कहीं वह बीमार न हो गया हो माँ...'मेरी बात ने माँ को हतप्रभ सा कर दिया और वह बिना कुछ जबाब दिये घर के अन्दर घुस गई। उसके चेहरे से बेचैनी साफ झलकती थी।

कस्बे के सरकारी डाक्टर को बुलाकर माँ ने मेरी पट्टी करवा दी थी और मेरी टाँग पलस्तर से जकड़ दी गई थी। डाक्टर के मुंह से यह हिदायत सुनकर कि मुझे महीना भर ऐसे बंधे बंधाये खाट पर लेटे रहना होगा तो मुझे रोना आ गया था। हो सकता है, अब मुन्डेर पर खड़े होकर रौनकी के घुंघरुओं की आवाज को उत्सुकता से सुन सकने का फिर कभी मौका आये ही न। अगर मेरी टांग बिलकुल साबित भी निकल आई तो भी मां मुझे कोठे की छत पर चढ़ने की आज्ञा नहीं देगी। और दूर नाईयों की गली का मोड़ पार करते ही मैं रौनकी को भला कैसे देखा करूँगा? फिर तो दूसरे लोगों की तरह अपने घर की दहलीज पर खड़ा रह कर ही उसका इन्तजार करना हुआ करेगा।

मैं कई दिन इन्हीं विचारों के जाल बुनता रहा। और इस सम्बन्ध में जितना अधिक सोचता, उतनी ही मेरी पीड़ा बढ़ती जाती। मन पर उदासी की एक छाया सी मंडराने लगती। पड़ा-पड़ा ऊब जाता तो माँ से बार बार जिद करता कि रौनकी का कुछ तो पता चलाना चाहिए। कितने दिन होने को आये कि वह नहीं आया।

सातवें रोज सूर्य निकलने के साथ-साथ मौजू ने रौकनी को घोड़े की पीठ पर बैठा कर हमारे घर के आगे ला उतारा। जैसे ही वह घोड़े से उतरा तो घुन्घरुओं की छन......छना......छन......के स्वर ने मुझे चौंका दिया और हवा में झूलते पेड़ के पत्तों की सनसनाहट और घुँघरूओं की मिली-जुली आवाज से उदास आंगन में फिर से जीवन लौट आया। घुँघरुओं वाली लाठी की टेक लिए रौनकी दहलीज लाँघकर अन्दर का गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उस पर उभर आयी झुर्रियों ने उसे भद्दा बना दिया था।

माँ जल्दी से उसके लिए मूढ़ा ले आई। और वह लाठी को मेरी खाट के सहारे टिका, स्वयं मूढ़े पर बैठ गया। चुपचाप सा, निर्निमेष वह मेरी पलस्तर लगी टांग को देखता रहा। उसके चेहरे से लगता था कि जैसे वह अपने हृदय की वेदना को छुपाने की कोशिश कर रहा हो। अस्फुट स्वर में वह बोला—

'मैंने तेरी खातिर डाकखाना से महीने भर की छुट्टी ले ली है। और मैं तुझे इतनी कहानियाँ सुनाऊंगा कि तू ऊब उठेगा।—'

कहानियों की बात से मेरा चेहरा खिल उठा। और मैं गत दिनों की सारी पीड़ा को भूल गया। सूर्य की हलकी सी किरनें आँगन की दीवार लांघ कर मेरे शरीर से स्पर्श कर रही थीं और मुझे एक असीम सुख का अनुभव होने लगा था।

जब भी मेरा मन कहानी सुनने को होता था, रौनकी डाकखाने के एक ओर से खाली गड्डी कागज जोड़कर बनाई अपनी कापी खोल कर बैठ

जाता था। रात को वह टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिख रखी अजीब-अजीब कहानियाँ कहता रहता था। ये पत्रों की छोटी-बड़ी बातों या घटनाओं को लेकर गढ़ी कहानियाँ रौनकी के रोम-रोम में रच गयी थीं। इन्हीं कहानियों की बदौलत उसने न जाने कितनों के दिलों में झांक कर देखा था। फिर जब वह झपकी लेने लगता तो मां को उसे सो जाने को स्वयं कहना पड़ता था।

मेरी टांग पलस्तर की कैद से मुक्त भी हो गयी। रौनकी फिर ड्यूटी पर जाने लगा लेकिन कहानियाँ सुनने की भूख जैसे की तैसे थी।

आषाढ़ के आखिर में पानी के कुछ छींटे पड़े तो गर्मी से झुलसे जा रहे पशु पंछियों और आदमियों ने एक सुख की साँस ली लेकिन दिल खोल कर बादलों ने बरसना जाने क्यों ठीक नहीं समझा, बादलों के झुरमट पूर्व दिशा से उमड़ कर आते थे लेकिन फिर कहीं गायब हो जाते थे। सब की आँखें, धुंधले मटमैले से आकाश की ओर टिकी रह जाती थीं। ढोर-डंगर कड़ाके की गर्मी से खेतों में काम करते हाँफ गये थे। किसानों की गर्मी से सांस फूलने लगीं थी और वे नित दिन बादलों के घूमते टुकड़ों की ओर नजरें लगाये रहते कि कब कोई काली कजरारी बदली बरसती है।

एक सन्ध्या को जब आकाश को धूल ने ढंक रखा था और हवा तेज होती चली जा रही थी, तो रौनकी धीरे-धीरे लड़खड़ाता सा नाइयों की गली लाँघ कर हमारे घर की ओर चला आ रहा था। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था। और वह बहुत निढाल दिखाई दे रहा था। उसके पास आज न तो डाक का थैला और न ही घुंघरुओं वाली लाठी थी। आँगन में घुसते ही उसने मुझे अपनी बाँहों में कसकर प्यार किया और फिर उसकी नजरें मेरी माँ को ढूंढने लगीं। पच्छिमी कोने पर बन्धी गाय रम्भाने और नाँद पर सींग मारने लगी थी और उसका चितकबरा बछड़ा

रौनकी को देखते ही उछल कूद करने लग गया था। मा किसी पड़ोसी के घर गयी थी। मैं दौड़ कर उसे बुला लाया। जब उसने भी रौनकी को शोकातुर दशा में पाया तो हक्की बक्की सी देखती खड़ी रह गई। कहीं फिर से बीमार तो नहीं हो गया वह, जो ऐसे गुमसुम मुर्झाया सा पत्थर बना बैठा है।

लेकिन मां के दिल का कौतूहल जल्दी दूर हो गया।

कूम की अन्धी विधवा करतार कौर का जवान बेटा पूर्णसिंह बर्मा के मोर्चे पर मारा गया था। अभी वह कुछ दिन पहले छुट्टी आया था और करतार कौर ने उसकी लम्बी आयू माँगते हुए गु ग्रंथ साहब का पाठ रखवाया और सारे गाँव की रोटी की थी। छुट्टी खतम हो जाने पर जब वह वापिस जाने लगा था तो करतार कौर ने अपनी पलकों ने नीचे थिरक रहे आँसुओं को छुपाते हुए कहा था—"वाहगुरु तेरी रक्षा करे। जब तू फिर लम्बी छुट्टी पर घर आयेगा तो मैं तेरा ब्याह रचा दूंगी और तू जुग-जुग जीये।"

उस शाम आँधी आ जाने के कारण वैसे ही जल्दी अन्धेरा फैल गया लेकिन कूम के पूर्णसिंह की मौत की खबर ने वातावरण में और अधिक उदासीनता भर दी थी। रौनकी ने वह रात हमारे घर ही गुजारी। उस रात उसने कोई कहानी नहीं कही और चुपचाप खाट पर औंधे मुंह पड़ा रहा। वह अपने गांव से इस लिए भाग आया था कि उससे करतारकौर का रौदन सुना नहीं गया था। सारा गाँव इस खबर को सुनकर सन्न रह गया था। गलियों के तिनके भी रो दिए थे। जिन सुहागनों के पति मोर्चों पर थे, वे इस खबर से काँप उठीं थीं और वाहगुरु से अपने प्रिय-जनों की लम्बी आयु के लिए प्रार्थना करने लगी थीं।

फिर एक के बाद नित्त कोई नई खबर आने लगी। जैसे लड़ाई ने अपना वास्तव रूप अब दिखाया हो। हमारे पड़ौसी मिलखासिंह का बेटा भी युद्ध के मोर्चे पर काम आया। मौत से कुछ दिन पहले अपने घर जन्मे

बेटे को अगली छुट्टी में जी भर कर देखने का संकल्प मन ही में लेकर वह मर गया था। आस पास के गाँवों भी उड़ती-उड़ती ऐसी खबरें आ रही थीं। हमारे गांव की दूर दूर तक फैली रिश्तेदारियों से कोई न कोई मनहूस खबर सुनने को मिल जाती थी। खुले आँगनों में लोग गमगीन से इन्तजार में बैठे रहते थे कि जाने कब कोई रिश्तेदारी से लोग आन जुटें। घर रुदन और सिसकियों से सुलगने लगे थे। और बाहर खेत हल की नोक के छूने को बेताब थे। ढोर डंगर भूखे और प्यासे नांद पर बंधे रम्भाते थे। उन्हें चराने के लिए बाहर ले जाने वाला कोई नहीं था।

रौनकी अब खोया खोया सा और उदास रहने लगा था। पाँचों गाँव उसे अब एक विकट घाटी दिखाई देने लगे थे। अब वह डाक स्वयं नहीं बांटने जाता था। आयोध्या पंडित की हट्टी पर बैठा लोगों को वहीं बुलाकर चिट्ठियाँ को देता था खुले आंगन उसे खाने को दौड़ते थे। पहले वह गांव की गलियों में से होता हुआ आता था, लेकिन अब चुपचाप पिछवाड़े की ओर से आ निकलता था। घुंघरुओं की आवाव तो क्या, उसके पैरों की भी आहट सुनाई नहीं पड़ती थी।

अगर कोई चिट्ठी खोल कर पढ़ने को उसकी तरफ बढ़ा देता तो वह अयोध्या पण्डित की ओर इशारा करके चुपके से खिसकने की करता था। पहले इन चिट्ठियों में मनुष्य की उमंगों और भावनाओं को व्यक्त करने वाले सीधे सादे शब्द उसके लिए आकर्षण का विषय थे, लेकिन अब वही शब्द उसे खून के धब्बों से प्रतीत होते थे। वे धब्बे जाने कितनों के दिलों का दाग बन गये थे।

पहली बड़ी लड़ाई के वक्त भी वह डाकिया था, तब वह लोगों के साथ अभी इतना घुला-मिला नहीं था लेकिन फिर भी उसके दिल पर लड़ाई गहरे घाव छोड़ गई थी। पिछले बरसों में भर चुके वे घाव अब फ़िर ताजा हो आये थे और नासूर बनकर रिसने लगे थे।

जो चालीस बरस में कभी अपने काम से उकताया नहीं था, वही आज अपने को पंगु समझने लग गया था। उसका चेहरा सिकुड़ कर सूखे चमड़े की तरह हो गया था। अब उस पर माँ की तसल्ली भी कोई असर नहीं करती थी। इस लड़ाई ने उसके अनगिनत घरों के साथ अटूट सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। उसने कभी अपने को अकेला महसूस नहीं किया था लेकिन आज वह दीपक की बुझती लौ की तरह डोलने लग गया था।

एक सुबह जब रौनकी ने घुंघरूओं वाली लाठी के साथ हमारे गाँव में कदम रखा तो घरों के अन्दर बैठी औरतें छुप-छुप कर बाहर गली में झाँकने लगीं। उन्हें आज बहुत दिनों के बाद घुंघरुओं की आवाज सुनाई दी थी, लेकिन बंद किवाड़ आज भी नहीं खुले। रौनकी का दिल चाहता था कि आज उसे घरों के बाहर आकर औरतें सिर्फ एक बार पुकारें और वह उनके बेटे व पतियों की लम्बी आयु की कामना करे लेकिन उसके दिल की यह साध दिल ही दिल में सुलगती रह गई। उसकी सद-भावनाओं को ठेस लगी। और उसका दुख हलका होने के बजाय और भारी हो गया।

उसी दिन इस खबर ने सारे गांव को चौंका दिया कि रौनकी डाकखाना की नौकरी छोड़कर नीली बार जा रहा है, यहां उसके भाई बरसों से ठेके पर जमीन लेकर खेती-बारी करते हैं। उसको पैंशन होने में कुछ ही बरस बाकी रह गये थे लेकिन अब वह चिट्ठियों को बांटने का काम नहीं कर सकता था। उसने धीरज खो दिया था। युद्ध के भयंकर परिणामों ने उसे निराश बना दिमा था। और वह दिल में जाने क्या क्या भाव छिपाये गांव छोड़ने को मजबूर हो गया था।

वह हम से विदा लेने आया था। उसके कंठ से कोई आवाज फूट नहीं रही थी और वह जामुन के पेड़ से सटकर खड़ा डबडबाई आँखों से मेरी ओर एक टक देखे जा रहा था। किसी ने पास अपने हृदय के

भाव प्रकट करने को शब्द नहीं रह गये थे । पेड़ के पत्तों की उदास सी छाया आँगन में मंडरा रही थी । वह लाठी से बंधे घुंघरू खोल कर मेरी तरफ बढ़ा और रुंधे स्वर में बोल उठा—

—यह घुंघरू अपनी गाय के चितकबरे बछड़े के गले में बाँध देना और लड़ाई के खतम होते ही मैं वापिस लौट आऊँगा ।—

अब भी वह घुंघरू बछड़े के गले में बंधे हुए हैं । जब मैं इनकी आवाज सुनता हूं तो मुझे रौनकी की याद आ जाती है। और मुझे लगता है कि जैसे वह अपनी जिन्दगी के सारे अरमान सारी भावनायें विरासत में दे गया हो ।

तेजो

गाँव में आज फिर हुल्लड़ मचा था।

—डायन तू मेरे बच्चे का चैन छीनकर रहेगी। कलमुँही, माँ होने का दावा करती है, पहले माँ का जिगरा तो ला। कहीं के चमारों कहारों की औलाद, तू मेरे बेटे को नीच बनाना चाहती है। तेरा सर्वनाश, तुझे धरती माता अपने में समा क्यों नहीं लेती।—

बसंत कौर के पहल करने की देर थी कि छोटी चारों बहुएं बाजू समेटे मुन्डेर पर मोर्चा सम्भाल कर आ खड़ी हुईं। जो किसी के मुँह में अंटशंट बात आती, बकती चली जा रही थी। ऐसी कांय कांय मची कि आधा गांव इकट्ठा हो गया। तेजो इस शोर गुल में भी निश्चल और अडोल खड़ी थी। उसकी आंखों से एक दो बूंदे आँसूओं की ढुलककर गालों पर लटक गयी थीं।

पड़ोसन औरतें अपने घरों के झरोखों में से झांक-झाँक कर यह नाटक देख रही थीं और कईयों ने तो मुंह में उंगले ले लीं थीं। उन सबकी निगाहों में तेजो के प्रति करुणा उमड़ी पड़ती थी। उन्होंने पिछले दस बरस तेजो के साथ बिताये थे। उस जैसा सलीका तो किसी बड़े घर की औरत में भी क्या होगा। वह भाग्यवान थी जिसके पैर पड़ते ही इस घर की सूखी जड़ फिर से हरी हो गयी थी। पाँचों नपूतियाँ जाने कहाँ से पहले ही अपनी कोख जलाकर आई थीं। हजार जतन करने पर भी उनकी कोखें सूखी रहीं। तेजो ने इस घर में आकर पांच बच्चों को

जन्म दिया था। सब के सब इतने खूबसूरत और प्यारे कि किसी बड़े रईसजादे के बेटे क्या होंगे।

सुबह जब मुन्डेर पर कौवा बोला था तो बड़ी बहू बसंतकौर ने कहा था—देखें, आज इस सुभाग्यशाली घर में किसके पैर पड़ते हैं—सारा दिन उसकी आंखें द्वार की ओर ही टिकी रही थीं।

तेजो के आने की खबर पाकर पांचों बहुएं घर के द्वार को अन्दर से चिटखनी लगा कर ऊपर छत पर चढ़ आयी थीं। और आँगन में खेल रहे बच्चे एकाएक इतना शोरगुल सुनकर घबरा गये थे और सबसे बड़ा लड़का मनधीर जो आठ बरस का होने को था, बाहर निकलने को छटपटा रहा था। द्वार की चिटखनी काफी ऊँची थी। उसे एक बार सूझ आयी। छोटे भाईयों से घोड़ी बनने को कहा। वह उनकी पीठों पर खड़ा हो गया मुश्किल से उसका हाथ ऊपर तक पहुंचा और चिटकनी दबा दी। द्वार खोलकर पाँचों बच्चे बाहर निकल आए। सामने चौगान में दीवार से सट कर तेजो अब भी निश्चल खड़ी थी और मुन्डेर पर से गालों की बौछाड़ वैसे ही पड़ रही थी। लेकिन बच्चों को बाहर निकल गया देखकर पांचों की जबानों को जैसे काठ मार गया हो, वे स्तब्ध सी देखती की देखती रह गयीं।

"माँ—।" मनधीर ने तेजो की ओर भयभीत किन्तु स्नेहसिक्त निगाहों से देखने हुए कहा, फिर उसने अपने छोटे भाईयों की ओर देखा जिन्हें मनधीर के माँ कहकर पुकारने पर तेजो के चेहरे से अपनी किसी खोई हुई प्रिय वस्तु का झांवला पड़ने लगा था।

"देखते क्या हो—माँ है"...मनधीर की बात छोटे बच्चों को द्रवितकर दिया। जैसे ही मनधीर ने कदम आगे बढ़ाये तो छोटे बच्चे भी तेजी से मां की ओर लपके। पाँचों बहुओं के हड़बड़ा कर नीचे आने तक बच्चे तेजो से लिपट चुके थे। और वह एक उन्माद की सी हालत में उन्हें बार बार चूमती जा रही थी। और उनकी बलईयां ले रही थी।अड़ोस-पड़ोस

बार चूमती जा रही थी। और उनकी बलईयां ले रही थी। अड़ोस-पड़ोस ने एक संतोष की साँस ली और उनके दिलों में एक मूक ध्वनि फूट निकली ;—आखिर जिगर के टुकड़े हैं, उसी का ही तो लहू हैं।

दूसरे क्षण तेजो अपने बेटों से एक बार फिर अलग कर दी गई थी। जब गाँव में उसने प्रवेश किया था तब सन्ध्या घिरने को थी लेकिन अभी झुटपटा-सा था। सौतो के साथ हाथा-पायी में, लोगों के बीच-बचाव करते करते अंधेरे की काली लकीरों ने उसे चारों ओर से अपनी लपेट में ले लिया। गांव की निस्तब्धता को भंग करके एक गगनभेदी करूण स्वर गूंजा और रात का सघन अंधकार फटकर चीत्कार बन गया—पापियो, तुम्हारा सर्वनाश। माँ के जायों को छीनने वालो, तुम्हारा पाप ही तुम्हें ले डूबेगा।—

कुछ नर्म दिल औरतों ने तेजो का पीछा करने का प्रयत्न किया किंतु वह अंधेरे में जाने कहा खो गई थी।

: : : :

दूसरे दिन रंडुवे सुन्दर लोहार की कोठड़ी में नित्य की भाँति लोगों का जमघटा लगा था। यहां जुड़ बैठकर अपना गम हलका करने वाले अधिकतर वे लोग होते थे जिन्होंने अपनी जायदाद को किसी व्यसन में पड़कर गवा दिया होता था या बिल्कुल बूढ़े खूसट। सब की जबान पर आज रह-रह कर तेजो पूर्बन का जिकर आ रहा था लेकिन सुन्दर लोहार गम्भीर मुद्रा बनाये हुक्की गुड़गुड़ाने में इतना तल्लीन था कि लोगों की बातें जसे उसके कानों तक पहुंचने से पहले उस घुटे से तंग वातावरण में डूब जाती थी। तूलड़ पोस्ती और कर्मचन्द जुलाहा एक नुक्कड़ में लगे बैठे थे। और अफीमचियों-सी भंगिमा से सब की तरफ घूर-घूर कर देख रहे थे। कर्मचन्द ने अपनी कनपटियों को खुजलाते और खाँसते हुए कहा —

4246

—"खुँ—मैं जब पूर्व से ढेरो को ब्याह कर लाया था तो कौन-जानता था कि वह ही एक दिन मेरे चार बच्चों की माँ बनकर मेरे दिल की रानी बन जायेगी।"—

कर्मचन्द की बात से सब खिलखिला कर हंस पड़े। और सबकी निगाहें उस पर जम गईं। उन निगाहों से स्पष्ट था कि साले ने बात भी की तो क्या—बुढ़ापे ने घर दबाया किन्तु औरत की हविस नहीं गई।

—क्या गड़े मुर्दे उखाड़ते हो भाई। वह तो वाह गुरु को प्यारी हो गई। किसी जिन्दा प्राणी का जिकर छेड़ो—। तुलड़ ने अफीम की एक मक्की के दाने बराबर गोली मुंह में निगलते हुए कहा।

कर्मचन्द विक्षोभ से भर उठा। उसने कई बार खुँ...खुँ...किया जैसे उसके कंठ में कोई बात अटक कर रह गई हो। तूलड़ ने जब उसकी ओर अफीम की गोली बढ़ाई तो उसने हाथ पीछे खींच लिया।

—ढेरो की याद आ गई क्या...? कैसी सलौनी औरत थी वह।

सबने देखा, कर्मचन्द की आँखों में नर्मी छा गई थी और उसने अपना सिर घुटनों में छुपा लिया था।

सुन्दर लोहार जो अब तक दम साधे बैठा था, बोल उठा—"किसी का दिल क्यों दुखाते हो, किसे अपने याद नहीं आते हैं—।" और फिर उसके दिल में तेजो कौंध गई और वह दुःखी हो उठा। उसका स्वर रुंधा था किन्तु उसमें वह दृढ़ता भरकर बोला—"मैं ही थम्मनसिंह के साथ गाँठ में पाँच सौ रुपये बाँध पूर्व देश गया था और जब हम तेजो को गाँव में लाये थे तो सब कहते थे—लच्छनों से औरत टिकाऊ नहीं लगती, थम्मनसिंह को छोड़ कर भाग जायेगी। पर उसने थम्मन सिंह के छिन गये सुख को ही औलाद देकर नहीं लौटाया वरन अपनी सौतों यातनायों को सहते हुए पाँचों भाइयों की झोली भर दी। थम्मनसिंह के घर औलाद आ गयी देख दूसरे भाई भला ईर्षा से क्यों न जल उठते। इसी ईर्षा की आग ने उसे पाँचों भाइयों की जोरू बनने पर मजबूर किया

और जब निपूती सुहागनें औलाद वाली बन गयीं, तेजो को ठोकर मार दी गई और उसे जाकर उलेवाल के बूढ़े बढ़ई के घर बैठना पड़ा।

गुल्ली कहार जो मुंहफट मशहूर था, बोल पड़ा—'ऐसे बेकदरे सालों को कहीं ठोर नहीं मिलती।—'

सुन्दर की गम्भीर बात से वातावरण में एक हरकत आ गई। बूढ़ों की नसों में गर्म लहू दौड़ने लगा था।

—खुँ...'माँ का दर्जा परमात्मा से भी ऊँचा है। क्या तुम समझते हो तेजो की आहें व्यर्थ चली जायेंगी ?'—कर्मचन्द ने खखारते हुए कहा।

—'ठीक—ही कहता—मेरा—यार।' तूलड़ ने झूलते हुए कर्मचन्द के कंधों पर सिर दे मारा। वह खिसक कर जरा परे हट गया। तूलड़ अपने को झूले पड़ा महसूस कर रहा था।

गुल्ली फिर बोला.........

—'वे पाँचों नाढू खाँ के साले समझते हैं कि धरती उन्हीं के बल पर टिकी हुई है। बेकसूर औरत को जीते-जी नर्क में ढकेल दिया। होने दो बेटों को बड़े, फिर देखेंगे माँ की पहचान कैसे होती है। मर्दों की मर्दानगी भी तभी परखी जायेगी। आखिर लहू को लहू खींचता है, उसमें सौ घोड़ों का बल होता है—'

—'अगर मुसीबतों ने उसे जिन्दा रहने दिया—तब—।' सुन्दर की आशंका ने सबको एक कँपकँपी छेड़ दी और गुल्ली के बूढ़े चेहरे पर की झुर्रियों को और अधिक घना कर दिया। वे सुन्दर की गुड़गुड़ी को तेजी से आपस में घुमाने लगे और तेज-तेज कश खींचने लगे। सबके सब जैसे हांफने लगे थे। दिशायें काली हो गई थीं। जब बड़े बूढ़ों के नाती-पोतों ने कोमल स्वरों से सुन्दर के द्वार पर आकर पुकारना शुरू किया तो सबका ध्यान टूटा और वे एक-एक करके झरने लगे।

—क्षणभर को वह अकेला रह जायेगा। उसे पुकारने कोई नहीं आयेगा। पिछले दस बरस से उसे किसी ने नहीं पुकारा जबकि उसकी

नेकबखत बीवी उसे अकेला छोड़कर चल बसी थी।—ऐसे सोच में गर्क सुन्दर बेचैन हो उठा और उसके दिल में तेजो का भूत-भविष्य एक बार फिर कौंध गया।

—गांव में कोई ऐसा जवाँमर्द नहीं रह गया था जो ठोंक बजा कर तेजो को शरण देता। उसने ही क्यों नहीं हौसला दिखाया। यही होता न, थम्मनसिंह उससे बैर रखने लगता। पिछले वर्षों में क्या कभी उसके दिल में हूक नहीं उठती रही ? औरत नहीं, वह उसे अपनी बेटी बनाकर तो रख सकता था। उसे पुकारने वाला तो कोई हो जाता। फिर क्या वह ऐसे काहिल पड़ा निकम्मे निठल्ले लोगों में अपनी जिन्दगी के दिन गँवाता। उसके सुघड़ हाथों द्वारा पके छत्तीस पदार्थ न जीमता।—

: : :

गेहूं के फसल पक चुके थे। दूर अमराई में कोयल की मीठी बोली सुनाई देने लगी थी। आमों के पेड़ बौर से लदे खड़े थे। थम्मन सिंह पहली बार करतारपूर की बैशाखी के मेले से मनधीर को साथ लिए लौटा था। मेले से वह मनधीर के लिए नये-नये खेल खिलौने लाया था। किसान का बेटा भले ही आठवें बरस में पैर रखते खेत की मिट्टी में मिट्टी हो जाता हो, लेकिन थम्मनसिंह अभी अपने बेटे को खूब जी भर कर खेलने देना चाहता था। वह स्कूल भेजा गया था पर वहां उसका मन नहीं जमा और तीसरे दिन ही वह स्कूल से ऊब गया था। थम्मनसिंह ने उसे थपकी देते हुए कहा था—कोई बात नहीं बेटा ! पढ़कर तूने कौन-सी नौकरी करनी है। बाप-दादायों के खेत हैं—और सबसे बड़ी बात यह कि उन्हीं खेतों की बदौलत मनधीर को रिश्ते नाते आने लगे थे। थम्मनसिंह कईयों को टाल चुकने के बाद अब किसी अच्छे घर का नाता ले लेने को उत्सुक दिखाई देने लगा था।

इस बरस धरती ने सोना उगला था। गेहूं का मोटा-मोटा दाना देखकर थम्मनसिंह अपने बेटे के भाग्य को सराहता था। यद्यपि घर में

पांचों बहूओं का चूल्हा चौका अलग था लेकिन बाहर खेत सबके साझे थे। जबसे पांचों घरों में बच्चे आये थे, कभी बहूओं का कलह कलेश सुनने में नहीं आया था। जो गर्म स्वभाव की थीं वह भी नर्म दिल हो गई थीं।

फसलों से भरे-पूरे खेत देखकर थम्मनसिंह ने ढील नहीं की और मसूदपुर के नम्बरदारों की लड़की का रिश्ता मंजूर कर लिया। अन्न के घर में आते ही जश्न की तैयारियां होने लगीं। अन्न के भरे भण्डार देखकर थम्मतसिंह आपे में नहीं था। वह खुले हाथों पैसा लुटाकर बता देना चाहता था कि कैसे कोई अपने बेटे की खुशी करता है। बरसों से जिस घर में बाजे नहीं बजे थे, आंगन में जुड़ बैठकर औरतों ने खुशी के गीत नहीं गाये थे, वह उस जड़ता को एकदम तोड़ देना चाहता था। गांव में जिसने भी सुना, ईर्षा से जल उठा। सुन्दर लोहार के कानों में भनक पड़ी तो वह हक्का-बक्का रह गया।

शकुन के दिन सारा गांव चौंक पड़ा जबकि तेजो नये वस्त्र तथा आभूषणों से सजी पैरों में झांजरें पहने छनछन करती हुई गांव में प्रविष्ट हुई। रास्ते में वह कई लोगों से टकराई किन्तु रुकी कहीं नहीं, सीधी चौकान में आकर खड़ी हो गई। और तब तक खड़ी रही जब तक कि सारा गाँव उसके गिर्द इकट्ठा नहीं हो गया। उसे किसी ने कुछ नही कहा। उसका खुशी में किसी ने बाधा नहीं पहुँचाई। पांचों बहूएं अपने बेटों के प्रति सतर्क जरूर हो गई। थम्मनसिंह के आंगन से बाजे के स्वर गूंजते ही तेजो के पैर उठे। झाँजर छनकी। पैर उठते गये। उनकी छनक से धरती लरजने लगी और तेजो अपने बेटे की कुड़माई (सगाई) की खुशी में नाचती रही। बाजे के स्वर थक कर घिघयाने लगे लेकिन तेजो के उठते पैरों की तेजी बढ़ती गई।

पहले तेजो की आंखों के आगे अपने देश की रासलीला और नौटंकी के भूले-बिसरे दिन नाच उठ होंगे, उसका बचपन फिर से जीवित हो

उठा होगा, लेकिन कब तक वह उन अतीत की यादों में डूबती उतराती रहती । उसके चारों ओर की धरती पूरे जोर से घूमने लगी । उसे सिर्फ झांजरों की आवाज सुनाई देती रही । धरती का पहिया तेजी से घूमता रहा और वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।

वह चेतना शून्य जमीन पर पड़ी थी जिसका न कोई देश था और न घर । उसे देखने से लगता था जैसे कि उसकी अनझपी पलकें विश्राम कर रही हों, स्थिर और शान्त । लेकिन साँस जरा तेज चल रही थी । चारों ओर सन्नाटा छा गया था । सुन्दर लोहार तेजो के बे-हरकत शरीर के पास आकर खड़ा हो गया । वह मुंह में कुछ बड़बड़ाया लेकिन लोगों को कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा । वह बड़बड़ाता रहा ।

लोगों की आँखें खुली की खुली रह गईं जबकि उसने तेजो की चेतना शून्य देह को कन्धे पर उठा लिया । वह अपनी कोठरी की ओर बढ़ चला । उसके कन्धे को तेजो की गर्म साँस गुदगुदाने लगी थी ।

छोटी सी घटना

"कभी कभी सुदूर एक गाँव में चम्पी भेड़ों का रेवड़ चराती मुझे पुकारती सुनाई पड़ती है, हालाँकि वह मुझ से इतनी दूर है कि उसकी पुकार पहाड़ों से टकरा कर रास्ते में ही डूब जाए। पर फिर भी मेरे कानों को उसकी आवाज का भ्रम होता है।"

"चम्पी कौन ?"

"अभी रहने दो, दोस्त। फिर कभी सुनना।"

"देखो ! तुम बेचैन से दिखाई पड़ रहे हो। सुना डालो। दिल हल्का हो जाएगा। एं !"

सिवल अस्पताल दून के जनरल वार्ड के हम दो मरीज आपस में यह बातचीत कर रहे थे। चन्दनसिंह नाम का एक गढ़वाली किसी दुर्घटना का शिकार होकर जहाँ आया था, और मुझे बहुत दिन से ज्वर आ रहा था। अब कुछ तबीयत हल्की थी। हम दोनों के पलंग एक दूसरे के साथ सटे हुए थे।

मेरी उत्कंठा को उसकी पैनी निगाह ने क्षण भर में ताड़ लिया था। वह एक स्नेह-स्निग्ध चितवन से मुस्कराया। उसके जोर से खँखारने पर मैं चौकन्ना होकर बैठ गया।

"तो तुम मेरी कहानी सुनकर ही रहोगे। है न ! उस तारकोल की सड़क को जानते हो न ! जो टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी रास्ते को फाँदती चीरती हुई चकरोती छावनी पहुंचता है कुछ बरस पहले वहाँ पर बड़ी भारी

अंग्रेजों की छावनी थी। और इर्द-गिर्द के गाँवों को काम धन्धा खूब मिल जाता था। मैं भी एक बार किसी सैनिक अफसर का बैरा बनने का इरादा लेकर वहाँ चल दिया। दून के कुछ मशहूर होटलों में पहले मैं बैरगीरी कर चुका था। और मुझे वे सब तौर-तरीके आ गये थे, जो एक अच्छे बैरा के लिए जरूरी होने चाहिएँ।"

तिथलाकोट गाँव पहुंचकर मैंने देखा कि आकाश मेघाच्छन्न हो गया है। और बूंदा-बांदी होने लगी है। मैं शिव मंदिर में घुस गया। मंदिर गाँव के पूर्वी छोर पर स्थित था। मुँह में कुछ गुनगुनाता हुआ मैं बूंदा बांदी का आनन्द लेने लगा। लम्बी चोटी, और चूगद से मुँह वाला पुजारी मेरे अचानक भीतर चले आने से तो कुछ बोला नहीं, लेकिन मुझे गुनगुनाते देखकर वह अपने मैले, घुन खाए दाँत दिखाते हुए, कहने लगा :

"ए छोकरे! मन्दिर में घुसकर क्या ऊटपटांग बक रहा है। बन्द कर अपनी बकवास।"

उसकी बात से मुझे तैश आ गया। और मैं मुट्ठी भींच कर उसकी ओर बढ़ा ही था कि वह शिव की मूर्ति के पीछे दुबक कर जा खड़ा हो गया। गिड़गिड़ा कर बोला :

"गाओ भईया! गाते जाओ। मैंने जरा मजाक में बात कही, और तुम भड़क उठे। बुरा मान गये।"

मैंने पुजारी की दशा देखी तो ठहाका मार कर हँस दिया। उसकी जान में जान आई। बाहर मेंह तेज हो गया। कोई पहाड़ी युवती भीगे कपड़ों में चुपके से मन्दिर के छोटे से बरामदे में आकर खड़ी हो गयी। शायद वह चरवाहा लड़की थी। वह जोर-जोर से अपनी भेड़ बकरियों को पुकारने लगी। एक अजीब सी लचकदार आवाज में। पुजारी फिर तुनक कर बोला :

"देखो ! तुम्हारी तो और बात है। तुम ठहरे परदेसी। लेकिन यह छोकरी भेड़-बकरियों को ऐसे पुकार रही है जैसे कोई प्रेमिका अपने रेवड़ का बहाना करके अपने प्रेमी को पुकारे। भगवान की मान-मर्यादा का ख्याल रखना इन लोगों ने बिलकुल छोड़ दिया है।"—फिर उसने एक लम्बी उसाँस भरकर कहा—"हे भगवान।" जैसे उस नीरस प्राणी के हृदय में भी औरत कौंध गयी थी।

इस बार मैंने जानबूझ कर पुजारी का पक्ष लिया। उस लड़की के गीले कपड़े शरीर से चिपक गये थे। और वह बहुत ही सुन्दर दिखाई दे रही थी।

मैंने कहा : "ए छोकरी ! ये मन्दिर है या तेरे बाप का घर ! तू कैसे चिल्ला रही है। एँ !"

उस लड़की के गीले जिस्म पर जैसे किसी ने चाबुक मार दिया हो। छटपटा कर उसने पीछे की ओर देखा और मेरी ओर घूमते हुए बोली :

"तो तुम हो पुजारी जी महाराज। जरा बाहर आइये। और गुरु-दक्षिणा ग्रहण कीजिए।" लड़की के तीखे व्यंग्य से मुझे क्रोध हो आया। मैंने दिल ही दिल में सोचा कि क्या है। गाँव की कोई मामूली छोकरी ही तो होगी। इससे दो-दो हाथ कर लूँ। मैं एक ही छलांग में कूद कर बाहर आ गया। वह भी अकड़ कर खड़ी हो गयी। बोली :

"तो तुम थे। जवान तो खूब हो। इसी उम्र में भगवान को सिमरने लगे। अभी कुछ जवानी का मजा लूटा होता।"

"अपनी जबान बन्द कर। तू देखती नहीं कहाँ पर खड़ी है ?"

"तुम कौन हो मन्दिर के जी। हमारा मन्दिर, हमारे बाप-दादाओं ने बनवाया। और तुम कहाँ से आ टपके हो।"

"भगवान के स्थान सबके साँझे होते हैं।"

'वाह उपदेशक जी। मुंह से उपदेश झरते हैं और शक्ल-सूरत एक दम गुंडों जैसी। क्यों जी, कौन हो तुम ?"

मैंने भी घाट-घाट का पानी पी रखा था। मुझे गुस्सा आ गया। और मैं उसकी तरफ बढ़ा ही था कि उसने मुझे जोर से धक्का दिया, मैं लुढ़कता हुआ एक गढ़े में आ गिरा और मेरा सिर पत्थर से टकरा कर झनझना उठा। पुजारी के हाथ पैर फूल गये। वह घबराहट में बाहर आकर युवती से बोला।

"तुम कैसी हो! किसी परदेशी से भला कोई ऐसे करता है। तुम तो उसकी जान लेने पर उतारु हो गयी।"

लेकिन लड़की के चेहरे पर किसी प्रकार का पश्चाताप दिखाई नहीं दिया। वह अचल खड़ी रही।

उसको निशाना बनाकर मैंने भी पत्थर उठा लिया था। अगर पुजारी बीच में न आ गया होता तो सचमुच उसका सिर फोड़ देता, मेरी कनपटी के पास से खून बह रहा था। पानी के छींटे अब भी पड़ रहे थे। पुजारी ने मुझे उठाया और बोला :

"बड़ी उद्दण्ड लड़की है। एकदम बेलगाम। इसका बाप गाँव का मुखिया था। अब सिर्फ विधवा मां है। एक बार की बात है कि किसी सैनिक ने इसे कुछ कह दिया था, बस इसने उसे वह मजा चखाया कि फिर किसी सैनिक ने इस गांव की ओर आंख उठाकर नहीं देखा। तभी से गांव वाले इसका सिक्का मानते हैं।...और तो और हम जैसे भगवान के सेवकों से भी टक्कर लेने में इसे रत्ती भर संकोच नहीं है।"

यद्यपि मैं निढाल पड़ा था, फिर भी पुजारी को भगवान के सेवक के रूप में देखकर मैं मन ही मन हंसा। चोट करारी लगी थी। पुजारी सहारा देकर मुझे मंदिर में ले आया। लड़की अब भी वहीं जमी खड़ी थी। मैंने उसकी ओर घृणा से देखा। वह फिर भी हिली-डुली नहीं।

पुजारी ने मुझे फर्श पर ही लिटा दिया। एक फटा चिथाड़ा लेकर मेरी कनपटी के जख़्म को पोंछने लगा। असह्य पीड़ा से चीखते हुए मैंने कहा कि जरा धीरे से। मेरे कान से खून बह रहा था।

बाहर खड़ी लड़की मेरी ओर एकटक निहार रही थी और दाँत पीस रही थी। उससे अधिक देर वहाँ पर खड़ा नहीं रहा गया और वह कूद कर मंदिर के भीतर आ गयी। पुजारी कांप गया, किन्तु मैंने घृणा से मुँह बिचका लिया।

वह पुजारी के हाथ से चिथड़ा छीनकर, उसकी चोटी को एक लम्बा झटका देती हुई बोली :

"तोंद पालने के सिवाय और कोई काम किया हो, तब ही तो... जा, भाग कर मेरे रेवड़ को देख। मैं इसे पट्टी बांध देती हूँ।"

पुजारी उखड़े-उखड़े से कदम रखता बाहर निकल गया। लड़की मेरे सिरहाने बैठी कनपटी से बहते खून को देखने लगी। फर्श पर खून के धब्बे पड़ गये थे। उसने अपने हाथों से मेरा सिर थाम लेना चाहा. लेकिन मैंने उसके हाथों को झटक दिया। लड़की के हाथों मेरा अपमान हो जाने पर मैं आपे से बाहर हुआ जा रहा था। मैंने देखा, लड़की का चेहरा अब भी वैसे ही खिचा हुआ था।। मेरे घाव को बड़े गौर से निहारती हुई वह मन्दिर के बाहर हो गयी। मैं अकेला रह गया था। मेरे मन में कई आशंकायें उठने लगीं। कहीं वे दोनों मुझे अकेला छोड़कर भाग तो नहीं गये ? लेकिन भागकर जायेंगे कहाँ ? इसी गाँव के हैं। लड़की भी खूब है। पहले मुझे धक्का देकर जहुन्नम पहुंचाने चली थी और अब उसे मेरे साथ सहानुभूति भी उमड़ आबी॰।।

लड़की जल्दी ही लौट आयी। उसके हाथ में कोई बूटी थी। उसे वह एक पत्थर पर घिस कर मेरे सिरहाने आ बैठी। इस बार मैंने कोई प्रतिरोध नहीं किया। घाव पर बूटी के लगते ही खून बहना बन्द हो

गया। मुझे कुछ संतोष हुआ। जब मैंने देखा कि वह मेरी ओर एकटक देखे जा रही है, तो मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

वह बोली :

"ए परदेशी ! किस गांव का है तू ?" मैंने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह मेरे इस व्यवहार से जरा भी विचलित नहीं हुई। बोलती चली गयी।

"मुझ से नाराज हो गया। बड़ा बहादुर है रे तू। उन लड़कों जैसा नहीं, जो जरा सा डराने-धमकाने पर हथियार डाल देते हैं। मुझे ऐसे लोगों से बड़ी घृणा है। तू मेरी परख में पूरा उतरा।"

लड़की की बात से मेरे चेहरे के भाव बदल गये। मैंने मन ही मन सोचा —

"अजीब लड़की है।"

"तू शायद मेरी बात का जवाब इसलिए नहीं देना चाहता कि तुझे दर्द हो रहा है या फिर तू मुझ से अपमान का बदला लेना चाहता है। मैं इन बातों से घबराती नहीं। जरा तंदुरुस्त हो ले, मैं अपनी भूल के लिए आप ही क्षमा माँग लूँगी।"

यह कहते हुए वह मेरे पास से उठकर बाहर मन्दिर के बरामदे में जा खड़ी हुई। मैं दरवाजे से उसे अच्छी तरह देख सकता था। यद्यपि वह मेरी ओर पीठ किये खड़ी थी तथापि मैंने भांप लिया था कि वह बहुत उद्विग्न हो गयी है। वह सामने पहाड़ की चोटी को निहार रही थी। पुजारी जाने भेड़ों को किस खण्ड में ले घुसा था, अभी तक नहीं लौटा था। लड़की ने एकाएक मेरी ओर घूम कर देखा, तो मेरी आँखें खुली थीं।

उसके चेहरे पर हल्की सी मुस्कराहट आ गयी, जैसे मेंह बरसाती बदली अचानक फट जाए, और प्रकाश हो उठे। जब उसके कदम मेरी ओर उठे तो मैंने उसी रुखाई से कहा :

" ए छोकरी ! एक काम करोगी, मेरा सिर फटा जा रहा है। गाँव से थोड़ी चाय तो ला दे।"

मेरे कहने भर की देर थी कि वह फुदक कर बाहर हो गयी। और जब लौटी तो उसके हाथ में गर्म दूध का कटोरा था।

बस फिर मैं उस पर फिदा हो गया "वह मेरे पर।"

गढ़वाली की रोमांटिक कहानी सुनते मैं उसी में लीन हो गया था। मैंने देखा, अचानक उसका चेहरा उतर गया है। और उस पर फिर विषाद की रेखाएँ उभड़ आयी हैं।

वह बोला—

"जब मैं कई महीने उससे मिल नहीं पाता तो मेरा हृदय फटने लगता है। मजदूरी की तलाश में हमें जाने कहाँ कहाँ की ठोकरें खानी पड़ती हैं...। जिन्दगी नीरस हो उठती है...।

मैंने गढ़वाली के चेहरे के भावों को एक बार फिर बड़े गौर से देखा, उसके जीवन में घटी यह छोटी सी घटना वास्तव में कितनी बड़ी थी, यह बात शायद वह भी नहीं जानता हो।

अपनी कहानी कहने के दिन से वह और अधिक उदास रहने लगा। अभी उसके घाव भरे नहीं थे। और डाक्टर के अनुसार उसे महीना भर अस्पताल में पड़े रहना था। पर उसे अपने घावों की तनिक मात्र भी परवाह नहीं थी।

एक रात वह अचानक अस्पताल से गुम हो गया। वार्ड का एक मात्र मैं ऐसा मरीज था जो जानता था कि गढ़वाली अपने घावों की परवाह न करते हुए भी कहाँ भाग गया है। लेकिन मैंने यह रहस्य किसी के आगे प्रकट नहीं होने दिया।

पंजाब की सोन-चिड़िया

यह उत्तरी पंजाब के एक पहाड़ी गांव की कहानी है ।

पूर्णिमा की रात थी । गांव के अंतिम कोने वाले घर में एक लड़की बैठी दीए की धीमी रौशनी में कोई लाल वस्त्र सी रही थी । उसकी पतली अंगुलियाँ तेजी से चल रही थीं । लड़की का ध्यान कभी कभी उचट जाता था और वह एक मधुर गीत गुनगुनाने लगती थी :

"पंजाब की सोन-चिड़िया......तेरे नीले नीले पंख......"

लड़की की उम्र मुश्किल से सोलह सत्तरह साल की रही होगी, यद्यपि उसके चेहरे पर पहाड़ के कठोर परिश्रमी जीवन के चिन्ह विद्यमान थे तथापि इससे उसके सौंदर्य को कोई आँच नहीं लगने पाई थी । फिर भी अगर यह चिन्ह न होते तो उसे पहाड़ की रानी कहा जा सकता था ।

उसका ध्यान सिलाई की तरफ़ से पलट गया था और वह किन्हीं विचारों में खोई हुई सी लगती थी । न जाने कितनी देर से उसका बूढ़ा बापू उसकी तरफ निर्निमेष देखे जा रहा था । उसके बूढ़े मुंह की झुर्रियों पर एक रंग आता था, एक जाता था । उसके चेहरे पर बेचैनी के चिन्ह स्पष्ट झलकते दिखाई देते थे । बाप बेटी भला इतने बेचैन क्यों थे ? कुछ अर्सा ऐसे ही बीत गया तो अंत में बूढ़ा बाप बोल उठा—

"चंचलो...... ।"

लड़की चौंक पड़ी । विचारों की लम्बी डोर का जैसे धागा टूट

गया हो। उसके हाथ की सिलाई नीचे गिर गई और वह काँपते स्वर में बोली :

"बापू, तू कब आया ? मुझे पता ही नहीं चला।"

"चंचलो, तू अभी अभी क्या गा रही थी ?"

"कुछ नहीं बापू।"

"तुझे कितनी बार मना किया है कि यह गीत न गाया कर, तू फिर बाज नहीं आती।"

"............................"

"रूठ गई क्या, मैं तेरे फायदे की बात कहता हूं। एक दिन तुझे सब कुछ मालूम हो जायगा। अच्छा, छोड़ इन बातों को। बता, तू अपनी सखी माया के घर चलेगी ? मैं उधर ही जा रहा हूं।"

"नहीं बापू ! आज मैं नहीं जाऊंगी। माया की शादी में थोड़े ही तो दिन रह गये हैं, और अभी कपड़े सिल कर तैयार भी नहीं हुए।"

"अच्छा, बता, तेरी अम्मा, कहाँ पर है ?"

"पड़ोसियों के घर, बुलाऊँ ?"

"मैं खुद बुलवाये लेता हूं।" यह कहते हुए बूढ़ा बाप बाहर निकल गया।

चंचलो के दिल में बेचैनी का धूआँ फिर से सुलगने लगा। जाने कितनी बार उसे यह गीत गाने से मना किया गया। आखिर क्यों ? उसकी सखियाँ भाँति भाँति के गीत गाती हैं, उन्हें कभी किसी ने मना नहीं किया। फिर इसी गीत में क्या बात है जो उन्हें भाती नहीं है। वह गहरे विचारों में खोई खोई रह गई। और, उसका सिलाई का काम अधूरा पड़ा रहा।

चंचलो का बाप हीरा जैसे ही बाहर निकला उसे चंचलो की माँ

सामने से आती हुई दिखाई दी।

निकट आकर वह बोली :

"आ गए ?"

"हाँ...... ।"

"क्या बात हुई ? मुंह पर उदासी क्यों छायी है ?"

"कोई बुरी बात सुनकर आया हूं। मैं तो पहले से ही कहता था कि इन मैदान वालों के आने पर हमारा सब कुछ चौपट हो जायगा। लक्षण कुछ ऐसे ही दिखाई पड़ रहे हैं।"

"क्यों क्या बात हुई ?"

"दो और नये आदमी आ रहे हैं। एक बूढ़ा और उसकी लड़की। कहते हैं, वे यहाँ दूसरे गांवों में भी स्कूल खोलेंगे। बच्चों को गाना-बजाना सिखलायेंगे।"

"देखा जायगा, चलो पहले घर चलें।"

"नहीं, मैं घर से ही आ रहा हूं। मैं राजू के घर जा रहूं। चंचलो की मां, यह सोच के कि चंचलो दिन-बदिन बदलती जा रही है। वह खामोश रहने लगी है और सदा वही गीत गुनगुनाती रहती है।"

"नहीं, नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। वह अपनी सखी की शादी के कपड़े बनाने में लगी हुई है न।"

"अपने आपको धोखे में रखना ठीक नहीं है। तू उस पंजाब की सोन चिड़िया वाले गीत की सारी हकीकत उसके आगे खोल दे। मेरा तो विचार जल्दी ही राजू से उसकी शादी कर देने का है।"

"अच्छा ! मैं चंचलो को सब कुछ बता दूंगी।"

घर के भीतर मां ने प्रवेश करते ही देखा, चंचलो किन्हीं विचारों में निमग्न बैठी थी, और सिलाई का काम कुछ दूरी पर बिखरा पड़ा था।

"चंचलो ! वह कुर्ती सिली क्या ?"

"अम्माँ !" चंचलो ने तनिक रुकते हुए कहा ।

"...हाँ...बस, थोड़ी और रह गई है ।"

माँ ने उसकी पीठ को थपथपाया और कहा—

"तुझे लाल कपड़े खूब सजेंगे ।"

"अम्माँ तु बहुत अच्छी है ।"

"चंचल मैं अभी आती हूं, तुझे एक बात कहनी है ।"

"क्या बात...?" उसने भोलेपन से कहा ।

लेकिन माँ कुछ उत्तर दिये बगैर ही दूसरी ओर चली गई ।

मां के अदृश्य हो जाने के पश्चात वह फिर विचारों में खो गई । वह कितनी अभागी है कि उसे यूँ दुबके दुबके रहना पड़ता है। उसकी सखी माया ने अपनी शादी के कपड़े स्वयं शहर जाकर,अपने कमाये पैसों से खरीदे हैं । वे कितने सुन्दर कपड़े हैं ! और यहाँ उसके भाग्य में ये पुराने ढंग के पहाड़ी कपड़े ही बदे हैं । जाने क्यों उसका बापू अध्यापिका मालती से घृणा करता है । अगर वह नीचे मैदानों से आई है तो क्या ? वह कितनी अच्छी है, सब से कितना प्यार करती है । गाँव की लड़कियाँ उससे बेलबूटे काढ़ने और कसीदे का काम सीखती हैं और वह साल में एक दो बार लड़कियों को शहर ले जाकर उन्हीं का तैयार किया हुआ सामान बिकवा देती है । इससे उन्हें काफी पैसे मिल जाते हैं । जिन पैसों से वह भाँति भाँति की चीजें खरीद लेती हैं । माया के पास रंगबरंगी साड़ियां हैं, आभूषण हैं लेकिन उसके पास कुछ भी नहीं है । माया मालती के साथ जाकर शहर का चक्कर भी लगा आयी है ।

शहर का कोलाहल, रेल,मोटर, रेडियो और सिनेमा की बातें सुनते चंचलो का मन ईर्षा से भर जाता था। । फिर वह शहर की कल्पना करने लगती और सपने लेती रहती थी ।

राजू और चंचलो का बचपन से ही प्यार चला आ रहा था। दोनों एक दूसरे को जी-जान से चाहते थे। सारा गांव भली भाँति जानता था कि दोनों का ब्याह होगा।

चंचलो की मां कुछ देर पश्चात लौटी तो उसके हाथ में एक कपड़ों की छोटी सी पोटली थी। चंचलों ने उत्सुकता से पूछा—

"अम्मां ! इस पोटली में क्या है ?"

"अभी बताती हूँ। यही बताने के लिए तेरे बापू ने मुझे भेजा है।"

यह कहते हुए उसने पोटली खोली। उसमें बहुत पुराने कपड़े थे। "अम्माँ, यह किसके कपड़े हैं ?" चंचलो ने पूछा।

माँ का गला रुंध गया। वह कुछ देर चुप रह निर्निमेष उसकी ओर डबडबाई आँखों से ताकत रही। फिर धीमी सी आवाज में बोली :

"तेरी बहन के।"

"मेरी बहन ? कौन सी मेरी बहत।"

"यही बताने तो आई हूं बिटिया।" माँ ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

"जल्दी बता न मां ?" अधीरता से चंचलो ने पूछा।

"यह उन दिनों की बात है जब तू अभी पैदा भी नहीं हुई थी। तेरी बहन तेरी आयु की थी। तब नीचे मैदानों से एक नौजवान पहली बार यहां पर आया था। वह बहुत अच्छा गाता था और सारा दिन पहाड़ों में घूमता रहता था। तेरी बहन को उससे प्रेम हो गया। और वह खोई खोई सी रहने लगी। मैदानों में जाने का भूत उसके सिर पर तेरी तरह सवार हो गया था।......और फिर एक दिन वह उस नौजवान के साथ मैदानों को भाग गई थी। तेरा बापू इसीलिए मैदानों से आने वाले लोगों से घृणा करता है। इसीलिए वह तुझे पंजाब की सोन-चिड़िया वाला गीत गाने से मना करता है। क्यों भला? उस नौजवान ने ही यह

गीत तेरी बहन को सिखलाया था और वह रात दिन यही गीत गुनगुनाया करती थी।"

चंचलो ने अपना सिर जोर से अपने दोनो हाथों में भींच लिया और कुछ देर वह खामोश बैठी रही। फिर वह दृढ़ता के स्वर में बोली।"

"पर नहीं अम्मा! यह गीत मुझे बहुत प्यारा लगता है। मैं यह गाऊंगी। पहले मैं अकेली गाया करती थी, अब मैं और राजू मिलकर गाया करेंगे। और एक दिन हम दोनों मैदानों की तरफ......।"

उसे ऐसा लगने लगा कि जैसे उसे नीले पंख लग गये हों और वह चिड़िया बनकर नीचे मैदानों की ओर उड़ी चली जा रही हो ...।

"शील ये कलाकार दीपक हैं, इनके चित्र हमने एक बार टाऊनहाल नुमायश में देखे थे। ये नजदीक ही कृष्णनगर में रहते हैं।" शील के अचानक कमरे में प्रवेश करने पर कीर्ति ने कहा।

शील ने विहगम दृष्टि डाली दीपक पर, और फिर कीर्ति की आँखों में गहरे पैठकर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगी। जैसे उसकी नाचती पलकें यह जानने को उत्सुक हों कि इन महाशय से अकस्मात मुलाकात कैसे !

यद्यपि वह बात को ताड़ गई थी लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। कुछ क्षण खामोशी में गुजरे, जब दीपक उठकर चलने लगा तो कीर्ति ने कहा कि आप तो निकट ही रहते हैं, मिलते रहियेगा और फिर वह शील की ओर मुखातिब होती हुई बोली :

"ये मेरी प्रिय सखि शील हैं, इन्हें भी पेंटिंग का बेहद शौक है। कभी हम आपका स्टुडियो देखने आयेंगी।"

दीपक तनिक सा मुस्करा दिया। कीर्ति से उसका यह प्रथम मिलन रुचिकर रहा और इस संक्षिप्त सी मुलाकात ने उसमें अपनेपन का अहसास भर दिया था।

"हाँ,—मैं अवश्य मिलते रहने का यत्न करूंगा। आज कल मैं कुछ नये चित्र तैयार करने में लगा हुआ हूं।" दीपक ने सकुचाते हुए कहा। लड़कियों से मिलते वह प्रायः सकुचा जाया करता था। और अपने

चित्रों की एलबम जो वह कीर्ति को दिखाने के लिए अपने साथ लेता आया था, बगल में दबाए जल्दी से कमरे से बाहर हो गया।

दोनों सखियां अब अकेली रह गई थीं। कीर्ति ने शील को बताया था कि उसके एक रिश्तेदार ने दीपक का पता दिया था और उसी ने पहले दीपक से मिलने की इच्छा भी प्रकट की। यह जानते हुए भी कि कीर्ति में बड़ी बड़ी विपदाओं को झेल जाने का अदम्य साहस है। और वह उसकी प्रिय सखि है, शील को उसकी कई बातें बहुत अखरती थीं। दिन में जब वह कई बार पुरानी बातों को दुहराती हुई कहती—

कभी वे दिन थे। मैं रोज जाने कितने सूट बदला करती थी। मेरे ही जैसी कितनी सखियाँ होतीं और जब हम सरगोधा शहर के बाजारों में निकल आती थीं तो कई कई दिन शहर में हमारे रंग-बिरंगे कपड़ों, हमारी अदाओं के चर्चे ही होते रहते थे।

कीर्ति का बारबार इन बातों को दुहराना शील की समझ से परे था। उसके दिल में बहुत सी बातें जमा हुई करवटें लेती रहती थीं और अब वह उन्हें किसी ढंग से कीर्ति के आगे प्रकट कर देने का इरादा कर चुकी थी। ऐसा ना करना भी कीर्ति के साथ अन्याय होता।

शील ने कीर्ति से पटपड़ गंज की तरफ सैर के लिए निकल चलने को कहा। हल्की हल्की धूप चांदी के तारों सी चारों ओर बिखरी हुई थी। सूर्य अन्तिम आभा सी दिखाकर लोप हो गया था। और झील कुरंजा के कच्चे कोठों में से धुआं सुलगने लग गया था। दोनों इक्के दुक्के बने मकानों को पीछे छोड़कर बाहर खेतों की जाती और छोटी सी पगडण्डी पर निकल आईं थीं। कुछ देर मौन चलते रहने पश्चात शील ने खामोशी को तोड़ा—"दीदी! बात कहूं एक, अगर..." शील ने झिझकते हुए कहा। लेकिन कीर्ति झट बोल उठी :

"अगर क्या, क्या बात है, कह न।"

"बात जरा कड़वी है, बुरा तो न मान जायोगी।"

"अगर बुरा मान भी जाऊं, दीदी तुम्हारी ही तो हूं।" कीर्ति ने शील के मन की बात को भांप लिया था। उसने शील को कन्धों से पकड़ कर हल्का सा झकझोरा और कहा :

"तू कह न, जो तेरे मन में है।"

"दीदी, तुम्हें घर वाले कहते हैं तो शादी क्यों नहीं कर डालती। तुम्हारी परिस्थिति में अगर मैं होती तो कभी अकेली न रह पाती।"

"शील ! शादी खिलवाड़ नहीं है।"

"तो यही खिलवाड़ है कि हम रोज नये नये नौजवानों के दिलों को टटोलती फिरें।" शील की इस बात से कीर्ति थोड़ा छटपटा सी गई और तमक कर बोली :

"सो कैसे ?"

"मदन गोपाल से तुम्हारी घनिष्ठता किस से छुपी है, और लोगों में तो बात यहां तक फैल गई थी कि मदन और तुम्हारी शादी होगी।"

"मैं मानती हूं, मदन अच्छे विचारों का युवक है, लेकिन यह तो हिमाकत होती अगर मैं बिना पूरी तरह पहचाने अपने को उस पर न्योछावर कर देती।"

"और...इससे पहले सुरेन्द्र के साथ भी तुम्हारी पहचान अधूरी रह गयी।"

कीर्ति शील की इस बात से हतप्रभ सी हो गई। और उसके चेहरे पर गम्भीर भावों की पीली रेखायें उभर आईं। शील उससे उम्र में कहीं छोटी थी लेकिन फिर भी आज वह उससे मन की बात खुल कर कह देना चाहती थी।

मन ही मन वह शील की बातों से सकपका गई हो यह उसने जाहिर नहीं होने दिया, वरन शील की बातों को मजाक में उड़ा दिया था।

दूसरे दिन शील म्युनिसिपल स्कूल के अहाते में बेंच पर बैठी देर से कीर्ति की इन्तजार कर रही थी। स्कूल की पहली शिफ्ट खत्म हो चुकी थी और पावस की तीखी धूप अहाते में फैलती जा रही थी। आकाश साफ था, किन्तु एकाएक हवा के रुक जाने से लगता था कि आज बारिश जरूर होगी। इस छोटी सी नयी बस्ती में बारिश होने पर टूटी फूटी सड़कें कीचड़ से सन जाती थीं और उन पर चलना दूभर हो जाता था। शील इन सड़कों से बहुत घबराती थीं। कुछ उसके चलने के ढंग से, और कुछ बेपरवाह स्वभाव होने के कारण वह रोज नये कपड़ों को कीचड़ से हुलिया बिगाड़ कर घर आती थी। मां की झिड़कियाँ या हल्की सी डांट डपट की वह अभयस्त हो चुकी थी।

उसकी सहेली कीर्ती पिछले दो बरस से म्युनिसिपल स्कूल में टीचर थी। घर से दूर, दिल्ली के समीप झील कुरंजा के एक कच्चे कोठे में वह अकेली रहती थी, जिसमें बारह महीने सीलन बनी रहती थी। वह शील को जी जान से चाहती थी। उसके मुसीबत के दिनों में वह आश्रय बनी थी। कीर्ती देखने से जितनी गम्भीर दिखाई पड़ती थी, शील उतनी ही नटखट। एक दूसरे के विपरीत स्वभाव के होते हुए भी वे इतना घुल-मिल गई थीं कि शील स्कूल से आते ही सीधी उसी के घर चली जाती और फिर घण्टों वहीं पड़ी रहती थी।

दूसरी शिफ्ट के बच्चे और अध्यापिकायें आ चुकी थीं लेकिन कीर्ति आज अब तक नहीं आई थी। शील ने ऊपर आकाश की ओर देखा, सूर्य को बादलों ने ढंक लिया था और बादलों के टुकड़े तेजी से इधर उधर घूमने लगे थे। पानी की कुछ छोटी छोटी बूँदें पड़ीं तो वह उठकर स्कूल के बरामदे में आ गई और कुछ मिनट और इन्तजार करने के बाद दफ्तर में गई। वहां से पता लगा कि कीर्ति की तीन दिन छुट्टी की अर्जी आई है। वह उदास सी स्कूल के अहाते से निकल बस स्टैंड की तरफ चल पड़ी। कृष्णानगर के बस स्टैंड के पास ही उसका घर था, किन्तु घर

तक पहुँचते पहुँचते पानी की बड़ी बड़ी बूदें टपकने लगी थीं। जब वह घर में घुसी तो उसके कपड़े पानी में भीग गये थे और वह सिमटती-सिकुड़ती माँ का कमरा छोड़ कर सीधी अपने कमरे में कपड़े बदलने चली गई।

दिन भर बारिश नहीं थमी तो शील घर में बैठी कीर्ति के विषय में सोचती रही।

छरहरे शरीर की हवा में झूलती काया सी कीर्ति आधा महीना खाट पर ही पड़ी रहती थी। उसने मुसीबतें बड़ी झेली थीं। और पहले पहल शील बड़ी बड़ी विपदाओं को झेल जाने के उसके साहस को देखते हुए ही उसकी ओर आकर्षित हुई थी। पाकिस्तान बनने पर वे सरगोधा से आये थे लेकिन शुरू से ही स्वतँत्र प्रवृत्ति की होने के कारण उसकी घर वालों से नहीं पटी थी। घर वाले उसकी शादी करने पर आमादा थे, तभी वह घर से भाग आई थी। पहले वह तीस रुपये महीना पर गाँधी नगर के एक स्कूल में पढ़ाती रही और फिर दो एक परीक्षायें देकर वह सरकारी स्कूल नौकर हो गई थी।

कल शाम को जब कीर्ति और शील पृथक हुई थीं तो तनाव की एक छोटी सी लकीर दोनों के बीच खिच गई थी। दोनों अपनी अपनी बात पर दृढ़ थीं। सब से बढ़कर तो यह कि कीर्ति शील को आज तक एक नटखट और चंचल लड़की समझती चली आई थी लेकिन कल वह उसकी बातचीत से दंग रह गयी थी। रात देर तक जागती रह कर वह अपने दिल को टटोलती रही किन्तु किसी परिणाम पर नहीं पहुंच पायी। दूसरे दिन जब दीपक आया तो वह उसे ऐसे खुल कर मिली जैसे दोनों चिर-संगी चले आ रहे हों और उसने इस दूसरी मुलाकात में अपने जीवन की बीती घटनायें और घर की छोटी से छोटी बात भी उसके आगे खोलकर रख दी। दीपक के लिए ही उसने स्कूल से छुट्टियां ली थीं। तीन चार दिन यह मुलाकातों का क्रम चला ही था। गर्मी की वार्षिक छुट्टियाँ आ गयीं और कीर्ति अपने पूर्व-निश्चित प्रोग्राम

के अनुसार दीपक के मधुर मिलन की दिल में एक हिलोर सी लिए अम्बाला चली गई ।

पहली बार उसके मन में आया था कि वह घर पहुंचते ही मां से साफ़ साफ़ दीपक के सम्बन्ध में कहेगी और जब उसे पता चलेगा कि मैंने किसी नौजवान को अपना भावी पति चुन लिया है तो वह फूली नहीं समायेगी । फिर जब कि उसे जात-बिरादरी के बाहर शादी कर लेने पर भी कोई आपत्ति नहीं है । और पिता, वे तो मानेंगे नहीं किन्तु कुछ समय पाकर स्वयं ही उनका गुस्सा ठंडा पड़ जायेगा और वे उसे फिर से गले लगा लेंगे । आखिर हैं तो पिता ही न ।

कीर्ति ने जब से शादी कर लेने की रजामन्दी जाहिर कर दी थी, घर के सब लोग मिलने आने लगे थे । कभी छोटा भाई, तो कभी बहन उसकी सुध लेने आये ही रहते थे ।

कहीं तो वह दिन थे ।

कीर्ति आगे पढ़ते रहने और अपने पैरों पर खड़ा होने का दृढ़ संकल्प किये हुए थी और घर वाले अपने हठ पर डटे हुए थे । एक बार जब वह बहुत दिनों के बाद घर गई थी तो उसे अपने आलिंगन में लिए भावावेश में उसके पिता ने कह ही तो दिया था : मैं तुझे मारने पर आमादा हो गया था बेटी ! इसके लिए अवसर ढूंढ़ता फिरा । मैं कितना नीच हूं कि सात दिन छुरा बगल में छुपाये तेरी कोठड़ी के गिर्द चक्कर काटता रहा । मेरी अक्ल पर कैसा पर्दा पड़ गया था ।

कीर्ति यह सुनकर सिहर उठी थी । उसे खूब अच्छी तरह याद था कि जब वह अकेली रहने के बाद पहले पहल घर लौटी थी तो उस पर सब घर वालों ने लानतें भेजी थीं और उसकी बड़ी बहन ने तो उसे देखते ही थूक दिया था, घृणा से मुंह बिचका कर दूसरी ओर चली गई थी । उसे अपने छोटे बहन-भाइयों तक को प्यार-दुलार करने से मना कर दिया गया था ।

छुट्टियों के यह दिन दीपक को सदियों के सदृश लम्बे और भारी लगे थे। कीर्ति ने दीपक से घर जाते समय जल्दी लौट आने का वादा किया था और कहा था कि मुझे तुम्हारा ख्याल टिकने ही कहां देगा? घर के तंग से वातावरण में मेरा दिल नही घुटेगा क्या? मैं जाते ही तुम्हें पत्र लिखूंगी और तुम्हें अपनी सेहत का ख्याल रखना होगा। कलाकार अपने आप से कुछ बेपरवाह होते हैं लेकिन मैं अब तुम्हें ऐसे बेपरवाह नहीं रहने दूंगी। और फिर विदा होते समय जाने कितनी देर वह भरपूर दीपक की ओर देखती रही थी।

शील इस अर्सा में एकाध बार दीपक के स्टुडियो में कीर्ति के पत्र का पता लगाने गयी थी लेकिन महीना भर गुजर गया था, कीर्ति का कोई पत्र नहीं आया। शील हैरान थी और दीपक असमंजस में था कि ऐसी क्या बात हो गई। शील को तो, कीर्ति जब कभी बाहर जाती थी, गाड़ी पर सवार होने से लेकर घर पहुंचने तक की छोटी छोटी बात लिखा करती थी और तीन चार दिन से अधिक अर्सा उसके पत्र आने में नहीं लगता था। लेकिन इस बार वह उसके पत्र की बाट देखती रह गई और देखते ही देखते छुट्टियाँ खत्म भी हो गईं।

स्कूल खुलने के सात रोज बाद कीर्ति लौटी थी। दीपक से उसकी भेंट बस स्टैंड पर अचानक ही हो गई थी। उसके चेहरे पर पहले से कहीं अधिक चमक दमक दिखाई पड़ती थी और उसने जारजट की बढ़िया साड़ी पहन रखी थी। नख से शिख तक दीपक ने ध्यानपूर्वक देखा, पैरों में बढ़िया सैंडल, कलाई पर चमचमाती घड़ी और रेशमी ब्लाउज में वह पहले से बिल्कुल भिन्न दिखती थी। दीपक ने उसे पहले सादे-सफेद कपड़ों में ही देखा था।

"आप कब आईं—" दीपक ने कहा था जब कि उसे देखते ही उसके दिल में भावनाओं की एक लहर सी उमड़ आयी थी।

"कल ही आई हूं, घर में इतनी फंस गई थी कि नौकरी का भी ख्याल नहीं रहा। और बातें तो अलग रह गई।" इतना कह कर वह दूसरे कोने पर खड़ी कुछ परिचित औरतों से बातों में लग गई थी। दीपक उसके इस अवज्ञा के व्यावहार पर भीतर ही भीतर तिलमिला कर रह गया था। उसे लगा था कि यह लड़की उसकी पूर्व परिचित कीर्ति नही हो सकती। वह तो कल्पनाओं की एक अजब सी दुनियाँ में उसे छोड़ कर गई थी और उसने पिछले दो महीनों में रंगीन सपनों के कैसे कैसे जाल बुने थे। वह स्टुडियो में बैठा दो दिन कीर्ति के आने की इन्तजार करता रहा। जब नहीं आई तो वह उत्कंठित तथा अधीर हो स्वयं उसे मिलने चला आया था। कोठरी में घुसते ही उसने देखा कि वह अपने नये नये कपड़ों की उथल-पुथल में लगी हुई है। दीपक को देखते ही जैसे वह चौंक पड़ी।

"आ......प" उसके एक लम्बा सा साँस खींचते हुए कहा।

"यूं ही मिलने चला आया था। काम करते करते कभी जी उकता जाता है।"

"अ...च्छा..." दीपक को लगा जैसे उसकी अधखुली थकी थकी सी पलकें किसी और ही तरफ लगी हुई थीं।

उसे कुछ भी तो याद नहीं है कि कीर्ति ने और कुछ भी कहा था। हां, वह उसके माँगने पर पानी का एक गिलास ले आई थी और फिर नये-नये कपड़ों को सहेजने में तल्लीन हो गई थी। उसे यह भी पता नहीं चला कि चुपके से वह कब वहाँ से खिसक आया था।

दो तीन दिन दीपक किन्हीं विचारों में खोया स्टुडियों में पड़ा रहा। आखिर उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह कीर्ति के मन की बात जानने का अन्तिम यत्न कर देखेगा। धुंधली झुटपुटी सी संध्या में झील के छोटे से बाजार में लोग खरीदो-फिरोखत में इधर उधर घूम रहे थे। कुछ सब्जी और आम बेचने वाले अपनी रेढियों पर गला फाड़-फाड़ कर

चिल्ला रहे थे। दीपक कीर्ति के घर को पीछे की ओर पड़ते रास्ते से आया था। पीछे तंग सी गली थी, जिससे दो तीन घरों की पीठें जुड़ी हुई थीं। कीर्ति के घर के पिछवाड़े की खिड़की खुली हुई थी। खिड़की के पास आते ही उसके पैर बंध गये।

"भीतर से शील और कीर्ति की बातचीत स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

शील ! तुम्हें यह कैसा भ्रम हो गया कि मैं एकदम बदलती जा रही हूँ। असल में घर जाने पर माँ ने मुझ से बहुत प्यार किया और उसने अब तक मुझे दी यातनाओं के लिए एक बार नहीं, सौ बार माफी माँगी। पिता जी को इस बरस चनों के व्यापार से पचास हज़ार का लाभ हुआ है। मां बहुत खुश थीं और उसने आती बार मुझ से कहा कि वह दस हज़ार रुपये मेरे नाम पर बैंक में अलग से रख देना चाहती हैं। और माँ ने मुझे बढ़िया से बढ़िया कपड़े सिलाकर दिये हैं। बढ़िया कपड़े पहनने की किस लड़की में तमन्ना नहीं होती। माँ ने मुझे घर बदल लेने के लिए भी कहा है।"

"घर का यह मोह तुम्हारी उन्नति में बाधा तो नहीं बन जायेगा, दीदी !"

"बाधा क्यों बनेगा ? यही होगा न मुझे कुछ बातें घर वालों की और कुछ उन्हें मेरी मान लेनी पड़ेगी।"

"दीपक इन दिनों मिला क्या......।" शील ने एक दम बात का रुख पलटते हुए कहा था। कीर्ति खामोश हो गई। दीपक का जिक्र आते ही जैसे उसका कंठ सूख गया था। बाहर खड़ा दीपक अपने विषय में कुछ जानने के लिए बेताब हो उठा।

"मैं दीपक की बात कह रही हूं दीदी। ऐसे ही किसी का दिल तोड़ना अच्छा नहीं होता न।"

कीर्ति फिर भी चुप थी। एक क्षण ऐसे ही बीता था कि कीर्ति के अस्फुट से शब्द दीपक के कानों में सुनाई पड़े :

"मन के मोड़ होते हैं शील ! दिल तो टूटते ही आये हैं।"

आगे दोनों सखियों में क्या बातचीत हुई, दीपक को कुछ भी नहीं मालूम। वह गहरा लम्बा श्वास ले आहत आँखों से एक बार जी भर कर कीर्ति के कच्चे कोठे को निहारता हुआ तेजी से कदम रखता बस स्टैंड की तरफ निकल आया था। विक्षुब्ध सा उदासी का आवरण ओढ़े वह किसी एकांत स्थान की ओर निकल जाना चाहता था।

घाव और मरहम

मरुभूमि में बगूले बारह महीने उड़ते ही रहें तो इसमें अनहोनी बात भी क्या है। लोग इन बगूलों की मार सहन करने के लिए आदी हो गए हैं। पर कभी किसी के हृदय में एक टीस की तरह उठा बगूला उसके जीवन में उथल-पुथल सी मचा देता था।

कृपाकरण फिर भी आज खोया-खोया था जबकि उसकी पत्नी कलावती दो चार रोज में उसके पास आने वाली थी। वह पूरे तीन बरस उससे पृथक रहा था। अपने दो नन्हें तुतलाते बच्चों की प्यारी बोली सुनने के लिए तरसता रह गया था। तीन बरस में उसके बच्चे बढ़ कर कितने बड़े हो गये होंगे, इसकी कल्पना-मात्र से वह रोमाँचित हो उठता था। उसके जड़ शरीर की नाड़ियों में रक्त प्रवाहित होने लगता था। लेकिन उसकी पीठ पर के घाव का निशान जिसे वह अपनी पत्नी से छुपाना चाहता था, बार-बार उसकी चेतनावस्था पर प्रहार करता था। घाव भी कोई छोटा नहीं था, सारी पीठ पर उसका निशान फैला हुआ था। इस घाव ने उसके आत्मबल को क्षीण कर दिया था, और इस पर अपनी प्यारी पत्नी से तीन बरस का लम्बा विछोह भी कोई छोटा घाव नहीं था।

कृपाकरण को बरसात में पीठ पर छोटा सा फोड़ा निकला, पर उसकी ओर उसने ध्यान ही नहीं दिया था। वह फैलता गया। और पीड़ा बढ़ती गई। पर वह फिर भी बेपरवाह स्कूल में पढ़ाने जाता रहा।

सूरतगढ़ कस्बे में वह जाट हाई स्कूल की छोटी श्रेणियों को पढ़ाता था। गर्मियों में सात-सात दिन लगातार चलने वाली प्रलयकारी आँधियाँ कृपाकरण ने झेली हुई थीं, जैसे धूल के कण उसकी श्यामवर्ण देह में मिलकर एकाकार हो गये हों। आँधी चाहे कितनी भयानक हो, वह स्कूल जरूर पहुँच जाता था। स्कूल में कोई भी बच्चा उपस्थित न रहे, वह अपनी ड्यूटी पर आ जाता। और कभी कभी मेज पर औंधे मुँह सो कर सारा समय काट देता था।

धीरे धीरे उसकी चाल धीमी पड़ने लगी। वह अपने घर से बड़ी कठिनाई के साथ स्कूल पहुँचने लगा। स्कूल में वह अचेत सा पड़ा रहता था। एक दिन जब वह बहुत ही निढाल दिखाई दे रहा था, तो बच्चे एक साथ चिल्ला पड़े : "मास्टर जी, आप से बू आ रही है—आपको क्या हो गया मास्टर जी !" और फिर बच्चों ने हाथों से अपने मुंह ढंक लिये थे।

कृपाकरण भी जैसे कुछ चेत सा गया हो, उसे लगा कि जैसे उसके शरीर की चर्बी गल रही है और उससे तीखी दुर्गन्ध उठने लगी है। दूसरे दिन कृपाकरण स्कूल नहीं जा सका, और पड़ोसियों ने उसके निष्प्राण दुर्गन्ध छोड़ते शरीर को ले जाकर शहर के एक अस्पताल में भरती करा दिया।

कहाँ वह अपनी पत्नी को प्रति सप्ताह एक पत्र लिखा करता था, और कहाँ अब जाने कितने दिन लिख ही न पाये।

उसकी पत्नी इन्दौर के किसी स्कूल में यह प्रण ले कर गई थी कि वह संगीत में पारंगत हुए बिना नहीं लौटेगी। इन्दौर के एक समीपवर्ती गाँव में उसके माँ-बाप रहते थे। वह हरेक सप्ताह उन्हें मिल आती थी।

संगीत में विशारद होकर वह पूरे तीन बरस के बाद अपने पति के पास लौट रही थी। जाने वह अपने पति के प्रति क्या क्या भावनाएं

तथा सपने लेकर आ रही है ! भविष्य की लम्बी चौड़ी योजनायें उसके मस्तक में कैसा ताना-बाना बुन रही होंगी ।

लेकिन कृपाकरण एकदम अपने को बूढ़ा, अपंगु, निरीह महसूस करने लगा था । जवानी में ही उसकी भावनाएं कुण्ठित होकर रह गयी थीं । पिछले बरसों में वह उस वृक्ष की तरह सूख गया था जिस पर पतझड़ की छाया पड़ गयी हो । अड़ोस-पड़ोस और स्कूल के अपने सहकर्मियों से वह बहुत कम बोलता था । न किसी के लड़ाई झगड़े में पड़ता, न किसी से दोस्ती रखने का प्रयत्न करता । पड़ोस के बच्चे उसके छोटे से आँगन में जब खेलते कूदते आ जाते तो वह उन्हें देखकर मुस्करा भर देता । न उनसे लाड़-दुलार करता, और न कभी डाँट-डपट दिखाता । बच्चे आते और खेलकूद कर स्वयं ही चले जाते । कभी कोई पड़ोसिन किसी चीज के लिए आती तो वह चुपचाप वह चीज दे देता । और फिर कभी न माँगता । अगर नहीं होती तो जवाब दे देता ।

इस तरह कलावती का जोड़-बटोर कर बनाया घर, कृपाकरण ने तीन बरस में खाली कर दिया था । धीरे-धीरे उसके पास एक खाट और कुछ कपड़ों के सिवाय कुछ नहीं बच गया तो पड़ोसियों ने भी चीजें माँगनी छोड़ दी थीं ।

वह कभी घर में कोई चीज नहीं लाता था । जो भी पैसे स्कूल से मिलते, उनमें कुछ रोटी के रखकर बाकी सारे के सारे कलावती को भेज देता था । जब कई महीने तनखाह नहीं मिलती, तो उसे बड़ी यातना सहन करनी पड़ती । वह उधार किसी से न माँगता, मिट्टी का माधो बना गुम-सुम पड़ा रहता । उसके सहकर्मी तथा पड़ोसी—जो उसके स्वभाव से भली-भांति परिचित थे—स्वयं सहायता कर जाते । उसको मानसिक संतुष्टि तब ही होती जबकि पैसे मिलते ही कलावती को भेज देता । और देरी के लिए क्षमा माँग लेता । एकाध बार उसने अपने घर के बर्तन बेच कर खर्च भेजा था । कलावती का क्षमाशील स्वभाव कभी कोई

बात मन पर न लाता । वह भी समझती कि उसका पति अपने पेट को काट कर उसकी तीव्र आकाँक्षाओं की पूर्ति कर रहा है । जब कलावती का हाथ बहुत तंग होता तो वह अपनी सहपाठिनों से उधार मांग कर किसी तरह गुजर कर लेती ।

अपने ब्याह के समय वे दोनों इन्दौर के एक अनाथालय में पढ़ते थे । कलावती को बचपन से गाने का शौक था । और कृपाकरण उसका प्रशंसक । तभी वह उसकी ओर खिंची चली आयी थी ।

लेकिन उसकी पीठ पर के घाव ने आज उसे मानसिक रोगी बना दिया था । उसके विचारों की स्थिरता जाने कहाँ भटक गयी थी ।

उसके मस्तिष्क में जब आकाँक्षाओं के बगूले उठते तो वह सोचने लगता कि मैंने अपना जीवन अकार्थ ही एक छोटे से स्कूल में खो दिया, लेकिन कलावती संगीत में पारंगत होकर आ रही है, उसकी कला साधना के सम्मुख मैं हेय होकर रह गया । तीन बरस वह कैसे अपने बच्चों का लालन-पालन करने के साथ अपनी साधना में संलग्न रही । तंगी के दिन उसने हंस कर निकाल दिये । अपने राह से वह जरा भी विचलित नहीं हुई ।

...और जब वह घाव देखेगी तो एक बार जरूर उसका संवेदनशील हृदय तड़पा उठेगा । और पूछेगी : तुम्हारे अच्छे भले सुडौल शरीर को किसने छलनी कर दिया, तुम्हें क्या सूझा कि मुझे खबर तक नहीं दी । चुपचाप इतनी बड़ी यातना अकेले झेल गये । और तुम अपना शरीर गला कर मेरी आकाँक्षाओं की पूर्ति करते रहे । मेरी खातिर उसे असह्य पीड़ा झेलनी पड़ेगी । नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा । मैं उसकी कला साधना में बाधा उपस्थित नहीं करूँगा । और उसके आगे घाव का रहस्य कभी प्रकट नहीं होने दूँगा ।

दो दिन वह इतना उद्विग्न रहा कि उसकी क्षीण देह जेठ की दुपहरी के सदृश्य जलने लगी । उसकी इस उत्तेजित अवस्था ने उसे खाट

पर डाल दिया। स्कूल से लौटते ही आज उसे बड़े जोर का ज्वर हो आया। सिर्फ एक रात भर का बीच में व्यवधान था। सुबह दस बजे की गाड़ी से कलावती आने वाली थी। अभी तक सारे काम अधूरे पड़े थे। घर में चूल्हा चौका तक नदारद था। चूहों की बिलें इतनी अधिक थीं कि उन्हें मूंदते कई दिन लग जाते। कृपाकरण ने साहस बटोरा और वह उठकर द्वार तक आया। अपनी पड़ोसिन शरबती रसोईदारिन के बड़े बच्चे को पुकार कर कहा कि वह सुबह स्कूल जाते समय उसकी छुट्टी की अर्जी लेता जाये।

बच्चे ने कौतूहलवश पूछ लिया :

"क्या बात है मास्टर जी ! आप स्कूल क्यों नहीं जायेंगे ? मेंह हो चाहे आंधी, आप तो कभी भी स्कूल से गैरहाजिर नहीं रहे।"

कृपाकरण ने बच्चे को कलावती के आने की बात बताकर कुछ हलकापन सा महसूस किया। और वह फिर उसी क्षण अपनी खाट पर आ लेटा।

तभी खबर कि शरबती रसोईदारिन दो एक पड़ोसिनों के साथ कृपाकरण के आँगन में घुस आयी।

"कलावती आ रही है, तो हमें क्यों न बताया।" शरबती के कृपाकरण से किये गए प्रश्न को दूसरी औरतों ने भी दुहरा दिया।

वह कुछ नहीं बोल पाया। गुम-सुम सा पड़ा रहा। औरतें आपस में खुसर-पुसर करती रहीं। फिर शरबती जाते समय बोली :

"पहले बताया होता, मैं घर-गृहस्थी का कुछ सामान जुटा देती। खैर अब भी मैं कुछ बरतन और ईंधन बटोरती हूं। अरे, तुम्हारे पास तो खाट भी एक ही है। एक-आध खाट का अभी प्रबन्ध कर देती हूं। तुम ने कोई दवाई ली। कहाँ ली होगी। अरे ओ लखन ! भाग जाकर मारकिट वाले वैद्य जी को बुला ला तो, भाग जा। हां, तो बताया होता

घर को लीप पोत कर सुथरा बना देती। तुम जैसा झेंपू आदमी तो दुनिया में शायद ही कोई हो।"

शरबती जैसे कृपाकरण के ज्वर से झुलसे जा रहे जिस्म पर शीतल जल की दो बूँदें छिड़क कर बाहर चली गयी। कृपाकरण कुछ आपे में हुआ और उसने एक हल्कापन सा महसूस किया।

सुबह गाड़ी से आधा घंटा पहले ही वह स्टेशन पर पहुँच गया। उसके शरीर और मन की शिथिलता उसे स्थिर नहीं होने दे रही थी। ज्वर उतर चुका था, लेकिन कमजोरी इतनी थी कि पैर लड़खड़ा रहे थे। हृदय जोर से धड़क रहा था।

वह सोच ही रहा था कि कलावती को मिलते समय सम्भल भी पायेगा तो कैसे; तभी सामने से शरबती और कुछ पड़ोसिन औरतों को स्टेशन की ओर आते हुए देखा। उसने जी कड़ा किया और स्थिर-चित्त से गाड़ी की इंतजार करने लगा। गाड़ी के इंजिन का धूआँ दूर से देखते ही उसके हृदय में एक ज्वार-भाटा सा उठा। आंखें छलछला उठीं, लेकिन जल्दी वह सम्भल गया और औरतों के बीच में सटकर खड़ा हो गया। कलावती का डब्बा बिल्कुल उसके सामने पड़ा। एक हाथ में सितार पकड़े और दूसरे से अपनी बच्ची दर्शना का हाथ थामे वह नीचे उतर आई। उसकी मुखाकृति पहले से कहीं अधिक गम्भीर दिखाई दे रही थी। सारा सामान गाड़ी से उतरा। कुली ने पूछा कि कुछ और तो बाकी नहीं है। कलावती ने सिर हिला दिया। शरबती और दूसरी औरतें कितनी देर गाड़ी के डब्बे की ओर एकटक ताकती रहीं। कृपाकरण अपने बेटे सुखिए के उतरने की फिर भी बाट देखता रहा कि वह उतरता ही उसके गले लिपट जाएगा।

"बेटी सुखिया...?" शरबती ने पूछा।

"क्या वह ननिहाल में ही रह गया?"

"हाँ, मौसी! वह ननिहाल से लौट कर नहीं आएगा। पिछले

बरस उसके ननिहाल में बाढ़ आई और फिर वहां पर मलेरिया फैला कि...।" आगे वह बोल नहीं पाई।

कलावती अपने पति की ओर पीठ किये खड़ी मुंह छिपाने का प्रयत्न करती हुई घर की ओर तेजी से कदम रखती हुई चल पड़ी। वह सोचती जा रही थी कि अपने पति से इतनी बड़ी घटना छिपाई भी कैसे जा सकती थी ?

कृपाकरण जड़ सा वहीं खड़े का खड़ा जम जाता। और उसका पीठ पर का गहरा घाव नंगा होकर रिसने लगता, किन्तु उसकी बड़े जिगरे वाली जीवट पत्नी के सुदृढ़ कदमों ने उसमें क्षण भर के लिए एक अजीब स्फूर्ति भर दी थी।

वह अपने घाव की बात एक बार भूलकर दर्शना को कन्धों पर उठाये अपने घर की ओर बढ़ गया।

ज़मीन का टुकड़ा

मन्सूरपुर गाँव के जागर को हल की मूंठ पकड़े चालीस बरस कैसे गुज़र गये, यह बात उसके दिमाग में कभी स्थिर नहीं हो पायी। और हमेशा लहरों के थपेड़े खाती नाव की तरह डोलता रहती थी। जाड़ा हो या गर्मी—उसने कभी किसी भी ऋतु की कठोरता को अनुभव नहीं किया। जाड़े से जब कभी उसे कंपकंपी महसूस होती तो रामसर कुएं पर झाड़ फूँस बटोर कर धूनी जला लेता और हाथ-पैर सेंक कर अपने काम में जुट जाता था। लेकिन गर्मियों की कड़कती धूप में जब कभी हाँफने लग जाता तो हल के आगे जुते बैलों की तरह उसके मुंह से झाग जाने लग जाती और वह बार-बार कुएं की निसार से आँजुली भरकर अपनी प्यास बुझाने की कोशिश करता रहता। कमर के गिर्द तेल से गच्च एक लंगोट, सिर पर चिथड़ी हुई मैली पगड़ी, गले में फटा पुराना कुर्ता, और मुंह पर फैली हुई झाड़-झंखाड़ सी दाढ़ी से वह वन-मानुस लगता था। सावन-भादों में उसका शरीर भड़ास छोड़ने लग जाता कि कोई आदमी उसके निकट खड़ा होने का साहस भी नहीं करता था।

उसने अपने जीवन के पचास वर्षों में एक बार भी गाँव से बाहर पैर नहीं रखा था। हाँ, धुंधली सी स्मृति अब भी उसके मस्तिष्क में अंकित थी, जो कभी कभी उसके हृदय को कुरेदती रहती थी जबकि वह छोटी उम्र में अपनी माँ के साथ एक बार हरिद्वार नहाने गया था। शहरों में शहर जालंधर का नाम सिर्फ वह जानता था। वह बहुत कम किसी से

बोलता और जब कोई बात उसके दिमाग में खौलने लग जाती, तो गूंगे की भांति अद्भुत आवाजें मुंह से निकालने लग जाता था। बचपन में वह छत से गिर पड़ा था और अधिक चोट आ जाने के कारण उसके मस्तिष्क की कई नसें फटकर बेकार हो गई थीं।

यही कारण है कि अपनी बीस बीघे जमीन के रहते हुए भी वह अपने दूर के चाचा लखासिंह का चालीस वर्ष से कारिन्दा चला आ रहा था। जब लोग उसे बे-जबान पशु कहते, तो थुथलाती जबान में उन्हें गंदी गाली देने लग जाता था।

जब गांव में कभी किसी लड़के या लड़की की शादी होती और औरतें रात के समय घड़े के साथ गीत गातीं या नाचतीं तो वह शरारती लड़कों के साथ नाच गाने वाले घर के पड़ोस में कड़कती धूप या जाड़े में दीवारों से लटका हुआ झाँका करता। ऐसे अवसरों पर उसे एक अजीब सी तृप्ति होती और उसका खून खौलने लग जाता था। वह बार-बार यही बात दुहराता : "मेरे भी बीस बीघे खेत हैं। अगली फसल घर आने दो, मैं अपना कोठा बनाऊँगा, बैलों की एक जोड़ी खरीदूँगा, अपनी जमीन पर स्वयं हल जोतूंगा और कोई औरत लाकर अपना घर आबाद कर लूँगा।...लेकिन हल की मूंठ पकड़ते ही उसके दिमाग से यह बात लुप्त हो जाती और वह मिट्टी में मिट्टी हो रहता।

जब कभी अनायास उसके भीतर कोई उबाल उठता तो घर रोटी खाने आया वह चौके में बैठी अपनी रिश्ते की बहू बचनी से धीरे-धीरे कुछ खुसर-पुसर करता रहता। कभी वह बढ़ईयों की नई ब्याह कर लाई, बहू की बातें छेड़कर मजा लेता कि उसने गांव में आते ही घूंघट उठा लिया है। वह गौने के दूसरे ही दिन बाहर खेतों में साग तोड़ने और सुबह शाम कुएं से पानी ढोने लगी है। और साधों की प्रीतो की चालढाल तथा अदा कुछ ऐसी अजीब है कि आदमी वहीं का वहीं जमा रह जाए। बचनी अपने गोदी के बच्चे को सहलाती धीर-गम्भीर बनी

जागर की बातें सुनती, और कई बार उसकी अचेत भावनाओं को छेड़ने के लिए वह स्वयं अड़ोस-पड़ोस की बातें छेड़ देती।

जागर का चाचा लखासिंह जब अपने दुश्मनों के साथ मुकद्दमों में और शराब के व्यसन में अपनी सारी जमीन बेचकर कर्जदार हो गया, तो उसकी गिद्ध-दृष्टि जागर की जमीन पर जमी रहने लगी। अब उसके पशु हांफ गये थे और आसाढ़ी-सावनी की फसल मुश्किल से गुजारे माफिक होती थी। घर की छोटी-मोटी आवश्यकताओं के लिए उन्हें मिलखी बामन का आश्रय लेना पड़ता। लखासिंह की पौत्रियां कड़वी बेल की भाँति फैल कर ब्याहने की उम्र में हो गयी थीं। लखासिंह अपने लड़के तथा बहू के साथ भीतर ही भीतर कोई खिचड़ी पकाता रहा, पर जागर के मन-चित्त कोई बात नहीं थी।

सुखचेनसर से चैत्र चौदस नहाकर जब जागर की रिश्ते की बहू बचनी लौटी तो उसने जागर को थोड़ी बहुत जमीन बेच देने के लिए रजामंद करने का इरादा कर लिया। शहर से वह पहली बार जागर के लिए खद्दर किरेप का कुर्ता और चाबी के लट्ठे की एक चादर लेती आई थी।

—"यह मैं तेरे लिए लाई हूँ। दर्जी को बुलाकर सिला दूँगी। देख तो सही, कपड़ा कैसा रहेगा?" जागर हक्का बक्का सा बचनी की ओर देखता भर रह गया। वह अपनी घनीं मूँछों में से तनिक सा मुस्करा दिया। बचनी ने जागर के साथ जमीन के सम्बन्ध में जरा ठहर कर बात चलाना ही ठीक समझा। और जब संध्या को वह घर पर रोटी खाने आया तो हौले से महक छोड़ते मीठे चावलों से भरी थाली उसकी ओर सरकाते हुए कहा :

"मैं कई दिन से तेरे साथ एक बात करने की टोह में हूँ—अगर तू बुरा न माने तो कहूँ—"

"बात का......है......" जागर ने थुथलाते हुए कहा।

'तुझ से क्या छिपा है—जवान बेटियाँ ब्याहने की उम्र में हो गई हैं...'

बचनी ने बात बड़े धैर्य तथा गम्भीरता से कही । "तू ये भी जानता है कि मुकद्दमों में बहुत से खेत बिक गये हैं,......अगर तेरे कुछ खेत बेच कर..." आगे बचनी से कुछ बोलते नहीं बना ।

"क्या......क्या......कहा......"

चावलों के कौर से भरा जागर का मुँह उछलने को हो आया । उसने जोर से थाली जमीन की ओर फेंकी और चावल आँगन में दूर तक बिखर गये । यद्यपि बचनी पहले से ही जानती थी कि अगर जागर को कोई जमीन बेचने के लिए कह देता था तो उसके सिर पर खून सवार हो जाता था । फिर भी उसने ऐसी बात कहने का साहस कर ही तो लिया !

जागर पैर में टूटे जूते फंसाकर विषैले न.ग की भांति फफकारता हुआ घर से बाहर निकल आया ।

सौ घरों के इस छोटे से गांव में जागर की बात कानों-कान सबके पास पहुँच गई । बड़े-बूढ़े जो जागर के कड़े श्रम के जीवन से भली भांति परिचित थे, वे जागर के प्रति सहानुभूति प्रकट करने लगे । लखासिंह के साथ जिनकी कोई पुरानी लाग-लपेट थी, वे किसी ऐसे अवसर की ताक में रहने लगे जबकि वे लखासिंह को और भी नीचा दिखा सकें ।

जागर के हृदय में गुस्से का उठा उफ़ान सा उसे अनायास सबसे पहले मिलखी बामन की दुकान पर खींच लाया । मिलखी तब दुकान के चबूतरे पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था । जागर को सामने से आता देखकर वह बोला :

"जागर भाई, कहो आज काम से कैसे फ़ुरसत हो गई । पिछले कई बरसों से तुमने एकाध बार भी इधर आने का कष्ट नहीं किया ।"

भाई के सम्बोधन से जागर की बाछें खिल उठीं । वह अपनी घनी धूल जमी मूंछों में से तनिक सा मुस्करा दिया । और मिलखी के पास एक बिछी हुई टाट पर बैठ गया ।

मिलखी गांव का चतुर बामन था। उसने पाकिस्तान बनने पर कई मुसलमान अराईयों की जमीन हथिया ली थी। लखासिंह के कान में भी उसने यह बात डाल दी थी कि अगर जागर मान जाये तो अपनी जमीन मेरे पास ही बेचना। मैं अच्छे दाम दूंगा और शर्तें भी कुछ ऐसी नर्म रख दूँगा कि आसानी से फिर जब चाहो जमीन पर कब्जा जमा लो।

मिलखी जागर को मीठी बातों में लगाकर जमीन बेचने की बात पर ही ले आया, लेकिन जमीन का नाम आते ही वह फिर एकाएक भड़क उठा और बामन को "पाजी, हरामी..." जाने कैसी कैसी अलंकृत भाषा से सम्बोधन करते हुए वहां से उठ गया।

"जुडवां भाईयों" के घर के आगे जाकर उसे उनकी बहू ने पुकारा। यद्यपि उसे मिलखी बामन की बात ने बिक्षुब्ध कर दिया था तथापि वह किसी से बातें करके अपने हृदय के बोझ को हल्का करना चाहता था। जुड़वां भाईयों की बहू उससे घूंघट नहीं निकालती थी। वह सीधा घर में घुसा और बहू ने उसके बैठने के लिए एक मूड़ा ला दिया।

"मैं तेरे लिए चाय बनाती हूँ।" कह कर बहू दूसरे कमरे में चली गई और वह अपनी सास से हौले-हौले कुछ बातें करने लगी।

लेकिन जुड़वां भाईयों के घर से निकलते समय वह और अधिक बिक्षुब्ध हो गया था। क्योंकि जुड़वां भाई गाँव भर में "बनिए जाट" के नाम से प्रसिद्ध थे।

वह सारा दिन गांव की गलियों में घूमता रहा और औरतें बड़े प्यार तथा नर्मी से उसे अपने आँगन में बुलाकर आत्मीय-भाव दिखाती रहीं। बड़े-बूढ़े उसे जमीन न बेचने की नसीहतें देते रहे। रात उसने साधूसिंह नम्बरदार के घर पर सोकर गुजार दी।

दूसरे दिन जब वह अपने घर की दीवार से सटा खड़ा छोटी लड़की मिन्दो से लाड़-दुलार कर रहा था, तो उसने सुना, बचनी किसी पड़ोसिन से कह रही थी :

"बीस बरस जागर ने आसील गाय बनकर हमारे घर काट दिये, लेकिन इस जमाने को आग लग जाये कि अब पशुओं के भी जबान लगने लगी है।" बचनी की बात ने दूसरी बार फिर सीधी जागर के मर्म-स्थल पर चोट की। और उसकी गूंगी आतमा कुलबुला कर रह गई। वह अपने टूटे छित्तर (जूते) घसीटता हुआ साधूसिंह नम्बरदार को ढूंढने निकल गया। सारे गांव की परिक्रमा कर आने के बाद आखिर वह चौपाल में बैठा मिल गया।

चौपाल में जागर की बात चल रही थी। वह आते ही कुछ बड़-बड़ाने लग गया। नम्बरदार ने उसके भावों से ताड़ कर कहा :

"भई जागर! पक्की बात कर। बात पर डटकर रहना पड़ेगा। मैं तेरी पूरी सहायता करूँगा और तेरी जमीन पहली पेशी में ही दिला दूँगा।"

जागर जल्दी में जाने क्या, कह गया, पर उसकी अस्पष्ट सी बात के पीछे जो भाव छिपा हुआ था, उसे सबने समझा और उसी दिन से जागर साधूसिंह नम्बरदार के ओसारे में रहने लग गया।

तहसीलदार के रूबरू पहली पेशी में जागर को अपनी बीस बीघा जमीन मिल गई। लखासिंह ने सौ पापड़ बेले। जागर को पागल करार देकर, विरोधियों पर उसे बहकाने का इलजाम लगाया, पर उसकी एक न चली। तहसीलदार ने दो सिपाही भेजे। और वे जागर को उसकी जमीन पर कब्जा दिला आये।

जागर गाँव में अब ऐसे चलता था कि जैसे उसे छिन गई बादशाही मिल गई हो। उसके सूने हृदय में आत्म-विश्वास के नये फूटे अंकुर से लगता था कि उसके बीज पहले से उसमें मौजूद थे।

देखते ही देखते कातिक की बुआई के दिन आ गये। तीन चार घरों ने मिलकर जागर की जमीन पर हल चला डाला। फसल बो दी। और लखासिंह के सीने पर जैसे सांप लोट गया। ईर्ष्या की लपटों ने जला कर उसका मुंह स्याह बना दिया।

जागर के लिए अब वह दिन दूर नहीं थे जबकि फसल पकते ही वह अपने घर का स्वयं मालिक बनने जा रहा था।

एक सन्ध्या को अपने खेत की मेंड़ पर बैठा वह सोच रहा था :

"पहले मैं बैलों की जोड़ी खरीदूंगा और उनके गले में घुंघरूओं की माला पहना कर अपने ओसारे में ला बाधूंगा। फिर...क्या होगा ? पांच सौ रुपया जोड़कर ब्याह कराऊंगा। और जाड़ों की रातों को चूल्हे के पास बैठकर रोटी जीमता उससे...मीठी मीठी बातें किया करूँगा...।"

वह कल्पना में ऐसा डूबा कि जब उसकी तन्द्रा टूटी तो गेंहू का एक पौदा खेत से उखड़ कर उसके हाथ में रह गया। उसने जोर से उसको मुट्ठी में भींच लिया और सामने कीमू अराईं की भेड़-बकरियों के रेवड़ को आते देखकर ललकार दी :

—"खेत से बचाकर...जरा...हो बई...रेवड़ खेत में घुसा तो...मैं ...मैं...।

जैसे उसकी आवाज में नव-जात गेहूं की पुकार थी।

नये हाथ

यह गाँव के लिए कम कौतूहल की बात नहीं थी कि गाँव का काहिल आदमी अपने गिरवी पड़े खेत छुड़ाने जा रहा है। यद्यपि सारा गाँव जानता था कि जब से ज्वालासिंह के बेटे जवान हुए हैं, उनके मजबूत हाथों ने पराई जमीन को भी जरखेज बना दिया है। अपने खेत गिरवी पड़े होने के कारण उन्होंने ठेके पर जमीन ले रखी थी, तथापि यह बात किसी के भी ख्याल में नहीं आ सकती थी कि मनसुरपुर के सूदखोर शाह के चंगुल से उसके खेत छूट भी जाएंगे। गांव का जो भी किसान एक बार उसके पंजे में फंसा कि फिर छूटा नहीं। ज्वालासिंह के सिर पर भी उसके कर्ज का बोझ इतना चढ़ गया था कि कई वर्ष पैसा आने की बाट देखते हुए उसे सब्र तथा धैर्य करना पड़ा था।

ज्वालासिंह का बड़ा बेटा तेजा तहसील जाने के लिए सुबह से नम्बरदार के घर पर कई चक्कर काट आया था। नम्बरदार और एक गवाह के तैयार होते-होते सूर्य सिर पर चढ़ आया। जब वे छः मील का रास्ता तै करके तहसील पहुँचे, तो तहसीलदार साहब के लंच का समय हो गया था, और उनकी पहली बैठक समाप्त हो गई थी। काम वालों की अत्यधिक भीड़ देख कर पहले ज्वालासिंह को कुछ घबराहट हुई, लेकिन जल्दी ही उसे कोई बात सूझ आई। वह मुन्शी के पास जाकर बोला—"दोपहर के बाद तहसीलदार साहब कब तक बैठते हैं, जनाब ?—

—काम कैसा है ?

—जमीन की रजिस्ट्री है सरकार—

मुन्शी ने यह उत्तर पाकर कि तहसीलदार साहब दोपहर के बाद रजिस्ट्री का काम नहीं करते, ज्वालासिंह ने चौकसी से आसपास देखते हुए 'पाँच का हरा नोट' मुन्शी की जेब में खोंस दिया और मन ही मन कहा—अब तो तहसीलदार साहब काम निपटाकर ही उठेंगे न मेरे सरकार !

तहसीलदार से जल्दी काम निपटाकर वह साधुसिंह नम्बरदार और मिलखासिंह गवाह को मिठाई की दूकान पर ले गया और कहा—"जी भरकर खाओ आज।" तेजा को उनके पास बैठाकर स्वयं शराब पीने शहर की एक तंग (संकरी) गली में घुस गया। लेकिन शराब के ठेके के पास जाकर उसके पैरों को किसी ख्याल ने मजबूती से बाँध लिया—शराब पीकर अब वह जानवर नहीं बना रहना चाहता था, जैसे कि वह अपने दुर्दिनों में धन्नों को पीटता आया था। और वह बिना शराब मुँह को छुए लौट आया। उसे तहसीलदार को घूस देने पर भी अफसोस था, पर अब तो मौका निकल चुका था। जब वे गाँव को लौट रहे थे, तो ज्वालासिंह के मस्तिष्क में अतीत की डोलती सी स्मृतियाँ उभर रही थीं :

...जवानी के दिनों की कोई ऐसी मधुर याद उसके मस्तिष्क में स्थिरता नहीं पा रही थी, जिससे वह सोच सकता कि उसने भी भरपूर जवानी के दिन देखे हैं। हां, उसे इतना याद हो आया कि उसका विवाह इतनी धूमधाम से हुआ था कि और किसी का क्या होगा। पांच दिन बरात रही थी और उसके बापू ने मुकंदपुर की कंजरी का मुजरा कराया था। शरीर का पहले से ही कमजोर होने पर जवानी में ही उस पर बुढ़ापे की छाया मंडराने लगी थी। फिर अकेले हाथ; काम ने उसे और निढाल कर दिया था, धन्नों जैसी सुघड़ औरत उसे न मिली होती, तो वह अब तक मिट्टी में मिल गया होता। धन्नों ही थी कि बैलों को हल के आगे जोतकर खेत

में छोड़ आती और वह कुछ देर उन्हें हांकता, लेकिन फिर जल्दी हाँफ कर खेत की मेंड़ पर हुक्को गुड़गुड़ाने बैठ जाता । और तबियत होती तो बैलों को हल के आगे जुते हुए छोड़कर चौपाल में आकर गप्पें हाँकने लग जाता था । बैल भूखे प्यासे खेत में खड़े रंभाते रहते और जब कोई पड़ौसी किसान धन्नो को जाकर खबर देता तो वह बैलों को खोलकर ओसारे में ला बाँधती । फिर वह उसे ढूंढती हुई चौपाल ही में पहुँच जाती और सबके सामने जली-भुनी सुनाती । वह अपराधी की भाँति सिर झुकाए घर को चल पड़ता । कभी कोई उसे दारू आ घूंट पिला देता, तो घर आकर धन्नों को पीटने लगता । वह उससे कहीं तगड़ी होती हुई भी पिट जाती और सिहर कर दीवार के सहारे लगकर सुबकने लग जाती ।—विवाह के पांच साल बाद उसके लड़का पैदा हुआ । फिर अगले वर्षों में वह दो और लड़कों की माँ बन गई । अब उसके लिए विपदाएं इतनी दु:खदायी न रहीं । और वह सब्र से सब कुछ झेलती चली गई । घर में बच्चों के आ जाने से बाहर खेतों का काम और ढीला पड़ गया । हर वर्ष उनके बैल भूख व बीमारी से मर जाते थे और लोग कहते थे—ज्वालासिंह के ओसारे में बैल बाँधने के बजाय बूचड़खाने में दे देना क्या बुरा है—

मनसूरपुर के ऊँचे पीर की कब्र पर पहुंचते पहुंचते झुटमूटा सा हो गया था । ज्वालासिंह ने खड़े होकर अपने सिर को झटका दिया और मुड़ कर देखा, तेजा और उसके साथी धुंधले से दिखाई दे रहे थे । वह कब्र के ऊँचे चबूतरे पर खड़ा हो गया । उसकी गिद्ध-दृष्टि सामने मनसूरपुर के शाह की सबसे ऊँची हवेली पर जमी हुई थी । तब ही पता चला जबकि उसके मुंह से ताबड़-तोड़ गालियों की बौछार पड़ने लगी—हमारे गाँव को लूटकर कंगाल बनाने वाले पाजी सूद-खोर ।—

...बापू......इससे पहले कि लोगों के वहां जमा होने की नौबत आती, एक तीखी आवाज उसके कानों में गूंजी । उसने मुड़कर देखा, तेजा उसके पीछे खड़ा था । वह चुपचाप चबूतरे से नीचे उतर आया और अपने

गाँव की ओर लपकता हुआ फिर गत जीवन की स्मृतियों में बह गया।

...उसके लम्बे जीवन में ऐसे बहुत कम अवसर आये थे जबकि उसने धन्नों को जी भर कर भरपूर प्यार किया हो। बस उसे तो दो कौर रोटी की दुश्चिंताओं में ऐसा ग्रस हो जाना पड़ा था कि प्यार की आकाँक्षाएं हृदय के भीतर दबकर रह गई थीं। कई ऐसे अवसरों पर जब पीड़ित मन हर्षोल्लास के क्षणों में राहत चाहता है, उसकी आकांक्षाएं सुलगने लगती थीं। लेकिन कभी-कभी ऐसा महसूस होता था कि जैसे उसका हृदय भावनाओं से एक दम सूना हो चुका हो।

लेकिन तेजा और उसके छोटे भाई जब आँगन में खेलते कूदते अपने पैरों पर चलने फिरने लगे थे, तो उसकी सोई हुई भावनायें फिर से जाग्रत हो उठी थीं। कभी-कभार खुशी के क्षणों में उसने धन्नों से हंसी मजाक में ठठोलियाँ भी की थीं। लेकिन जवानी कैसे प्यार की ताजगी उन्होंने कभी भी महसूस नहीं की। दुश्चिंताओं के घेरे धुँध की तरह उन्हें घेरे रहे। फिर जब ठेके पर ली जमीन पर काम करने वाले हाथ बराबर बढ़ते गये, यह धुँध फटने लगी थी। उसका आत्मसम्मान फिर से जीवित हो उठा था। पहले अपने को अत्यन्त हीन तथा कमजोर महसूस करते हुए उसके लिए दो आदमियों में खड़े होकर बात करना भी दुश्वार थी। चौपाल के पास से यह सिर झुकाए आगे बढ़ जाता था और अकेला खेत की मेंड़ पर बैठा अवसन्न मन हुक्का गुड़-गुड़ाता रहता था। लोग उसके ओसारे में एक ही भूखा-प्यासा बैल देखते आये थे, कभी उन्होंने बैलों की जोड़ी बंधी नहीं देखी थी। अपने कमजोर हाथों पर वह कभी-कभी इतना खीझ उठता कि वे कमजोर हाथ झड़ क्यों नहीं जाते, उसका जीवन इन्हीं हाथों ने तो दूभर बना डाला है। अपने खेत शाह के पंजे में फंसे देखकर उसे और अधिक रंज होता था। कितना बड़ा पेट था उस पापी शाह का, जो गाँव के सारे ही खेतों को निगलने

पर तुला हुआ था।......

आज जब कि वह अपने खेत शाह के चंगुल से छुड़ा कर गर्व से छाती फुलाए एक विजयी की भाँति गाँव को लौट रहा था तो स्वाभाविक था कि शाह की ऊँची हवेली देखते ही उत्तेजित हो उठता। किसी को चुनौती देने का उसके जीवन में यह पहला अवसर था। यद्यपि तेजा ने उसे रोक दिया था, फिर भी उसे संतोष था कि उसने शाह को ललकार तो दी है। वह पहले जैसा कमजोर, काहिल नहीं कहलाना चाहता था। उसमें नये जीवन का अंकुर फूट पड़ा था। अब वह हल की मूंठ को मजबूती से पकड़ सकता था।

सामने शीशम के वृक्षों पर नजर पड़ते ही उसका ध्यान टूटा और उसे अपने खेत नजर आने लगे। खेत जो अब बन्धन से छूट गये थे—जिन पर वह हल चला सकता था, कितने वर्ष वह उनसे पृथक रहा था। उसने खेत में प्रवेश होते ही उसकी मिट्टी को उठा कर माथे पर लगा लिया। और फिर खेत के कोने पर बनी समाधि के आगे अपना मस्तक टेक दिया। कुछ क्षण वह अपने पूर्वजों की आराधना में नत खड़ा रहा।

तेजा और उसके साथी नहर के पुल पर किसी से बातों में लग गये थे और वह गांव की ओर लपका। धुंधली सी चाँदनी में चौपाल में बैठे लोग गप्पें हाँक रहे थे। उसका मन हुआ कि वह कुछ समय चौपाल में रुक जाये। किन्तु वह घर पहुँच कर धन्नों से खेतों के बन्धन-मुक्त हो जाने की बात कहने के लिए उतावला था। घर की सांकल खोलते ही उसने पुकारा......धन्नों......और मीठे चावलों की गन्ध उसके नाक को चढ़ गई। धन्नों ने आवाज सुनी तो गद्‌गद हो उठी। ऐसी मीठी बोली में आज तक उसके पति ने कभी नही पुकारा था। वह चौके से उठकर द्वार की ओर लपकी।। पति को भावावेश में देखकर कुछ ठिठक सी

गई। ज्वालासिंह ने जब अपने बेटे दालान में बैठे देखे, तो वह भी आपे में हुआ।

वह बोला—"धन्नो, अब के आसाढ़ की फसल घर आते ही हमारे आँगन में बाजे बजेंगे। तुम्हारी बहू अपना भाग्य लेकर इस घर में आयेगी।........."

दिये की धीमी रोशनी में लगा, जैसे कि उसकी बात से धन्नों के झुरियां भरे चेहरे पर जवानी का सा नया प्रकाश प्रदीप्त हो उठा है।

वह शहर मेरा था

जब मैं अपने सेठ के साथ दिल्ली से हवाई जहाज पर बैठकर लाहौर के हवाई अड्डे पर उतरा और वहाँ से एक रेशमी पर्दों वाली मोटर में फ़लेटी होटल पहुँचा तो मुझे यह शहर पराया सा लगा।

मेरी परेशानी को सेठ ने भांपते हुये कहा :

"यह शानदार पहरावा और होटल की चकाचौंध देखकर लगता है कि तू भौंचक्का रह गया है। यह होटल एशिया के बड़े होटलों में शुमार होता है। यहाँ पर साधारण लोग नहीं ठहर सकते।"

यह कहते हुए उसने मेरी ओर एक भेद भरी निगाह डाली, एक अनुभवी व्यापारी की भांति जैसे उसकी मचलती हुई पलकें कह रही हों :

"यह तेरे ही भाग्य में बदा था जो तुझे मेरे साथ यहाँ आना नसीब हुआ.........।"

कल जब मैं मन ही मन सेठ को कई महीने की तनख्वाह रोक रखने के लिए कोस रहा था, तो अचानक मेरे कमरे में दाखिल होते हुए उसने बड़ी हलीमी से कहा :

"हम सुबह छः बजे के जहाज में लाहौर जा रहे हैं। मैंने तेरे लिए एक गैबरडीन का बढ़िया सूट सिला लिया है, मैं तुझे एक व्यापारी बनाकर अपने साथ लिए जा रहा हूँ।"

उसकी आवाज में पैसे की खनक थी और फिर उसने अजीब तरह से आंखें झपकीं।

सेठ गोविन्दराम घोड़ों का एक सौदागर था। उसके घोड़े हिन्दुस्तान के सब बड़े-बड़े शहरों की रेसों में भारी इनाम जीत चुके थे। अभी पिछले बरस कांग्रेस ने उसे राज्य सभा के लिए नामजद किया था। इसलिए सरकारी हल्कों में उसकी अच्छी पूछताछ होने लगी थी।

सहसा सेठ ने घंटी का सफेद बटन दबाया और आंख झपकते ही अप-टू-डेट बैरे हाजिर हो गये। सेठ ने अपना दिन का प्रोग्राम समझाया और फिर खाने-पीने की चीजों की एक लम्बी फहरिस्त उनके हाथ थमाते हुए बोला :

"जरा होशियारी से.........।"

फिर वह मेरी ओर मुड़ा। चाय की मेज पर बैठते हुए कहने लगा :

"आमलेट खायेगा या तू भी शाकाहारी........" और वह अजीब तरह ठहका लगा कर हंस पड़ा।

"अच्छा, यह ले, यह मक्खन डेनमार्क का है।"

"डेनमार्क का मक्खन......" यह नाम मैंने पहले कभी नहीं सुना था और झिजकते हुए मक्खन लगा टोस्ट पकड़ लिया।

आमलेट की प्लेटें सफाचट करके और चाय की भाप छोड़ता हुआ वह कहे जा रहा था :

"यह शहर दंगों ने मुर्दा बना दिया है। पहले तो यहाँ पर बड़ी चहल पहल होती थी। जहाँ की रेसों का हिन्दुस्तान भर में कहीं मुकाबला नहीं था। दन्गों की उथल-पुथल में मेरी एक ब्यूक कार मेरे ही मुसलमान दोस्त ने हथिया ली थी। इन लोगों का अब कोई भरोसा नहीं रहा। अब भी यहां कोई हिन्दुस्तानी खुले-आम नहीं घूम सकता, जबकि हिन्दुस्तान में..."

सेठ ने भद्दी तरह से डकार लेते हुए चाय के खतम होने की सूचना दी। दरवाजे के दूसरे छोर पर खड़े बैरे अन्दर घुस आए।

फिर वह मुझे उन बातों का अभ्यास कराने लगा, जो मैंने सौदागरों के सम्मुख एक बनावटी शिष्टता से ब्यान करनी थीं। वह बोला :

"मैं यहाँ के सौदागरों पर रौब बैठाना चाहता हूँ। जब भी दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे हो गये तो हम पाकिस्तान के साथ घोड़ों के व्यापार में हिन्दोस्तान को अधिक से अधिक लाभ पहुंचा सकेंगे। अच्छी नस्ल के घोड़े यहाँ पर ही रह गये हैं।"

बाहर होटल के आगे से कभी कोई हॉकर चिल्लाता हुआ निकल जाता था और दूसरी कोई आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुँच पाती थी। शहर के शोरगुल से हम कहीं दूर बैठे थे।

उसने किताबों की शैल्फ पर से एक जासूसी उपन्यास उठाया और आराम कुर्सी पर बैठते हुए कहा :

"आज की शाम खूब गुजरेगी। ईरानी नाच है...ईरानी सौन्दर्य... ओह..." उसके मुंह पर एक आभा सी आई, पर दूसरे क्षण ही वह फीकी पड़ गयी।

किताब को मेज पर टिका उसकी निगाहें मेरी ओर जम गयीं।

"तू फिर उदास......?"

"नहीं, नहीं, मुझे वह दिन याद आगया था जब मैं पहली बार घर से भाग कर इस शहर मे आया था, तब......"

होटल की चकाचौंध मेरा गला घोंट रही थी।

सेठ ने होशियारी से फिर मेरी बात को भांप लिया और बोला :

"हाँ, तब यह शहर आबाद था, अब तो यह खण्डहर बनकर रह गया है। मैं तुझे शाम के नाच में अवश्य में ले जाता, किन्तु वहाँ एक खास किस्म के लिबास में जाना पड़ता है। और सोसायटी में जाने के लिए कुछ 'एटीकेट' सीखने की भी जरूरत होती है। बीती हुई बातों को कुरेदते रहना ठीक नहीं होता। आदमी की परेशानी और उदासी के लिए

शेक्सपीयर, व्हिस्की और...बड़ी शानदार ईजादें हैं...लेकिन तू तो शाका-हारी......।" यह कहते हुए वह एक बनावटी हंसी से लोट पोट हो गया।

फिर वह बड़े इत्मीनान से जासूसी उपन्यास पढ़ने लगा। बाहर बरा-मदे में आकर मेरी आँखें किसी बैरे को ढूँढने लगीं। मेरा अब किसी से बात करने को जी चाह रहा था।

खुले लान में किसी पार्टी का इन्तजाम हो रहा था। मोटर कारों की कतारें लम्बी होती चली जा रही थीं और एक ही रंग की खास वर्दियाँ पहने पंक्ति में खड़े ड्राइवरों से कई नये आने वाले भद्र-पुरुषों को 'गार्ड आफ आनर' का भ्रम होता था। शाही वर्दियों में बैरे तेजी से इधर उधर आ जा रहे थे। किसी को बात करने का अवकाश ही कहाँ था? जरा सी भी चूक हो जाने पर उन्हें किसी साहब के क्रुद्ध हो जाने का भय बना रहता था।

कम्पाउण्ड में हरी घास के ऊपर एक कीमती गलीचा बिछा हुआ था। और उस पर बैठे दो सिन्धी नवाब ताश खेल रहे थे। पास ही बैठा एक अंग्रेज जोड़ा उनके खेल से आनन्द ले रहा था। मेम अपने गोद में लिए कुत्ते को चूमती चली जा रही थी। साथ वाले कमरे से जोर जोर से बोलने की आवाज आ रही थी। सहसा मेरा ध्यान उधर जा टिका। किसी राजनैतिक विषय पर बहस हो रही थी। दोनों अपनी-अपनी बात को पूरा जोर लगा कर सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे थे। एक ने कहा:

"पाकिस्तान का राज्य बंगालियों के हाथ में चला गया है।"

दूसरा बोला:

"इस्लामी राज्य में बंगाली, पंजाबी का कोई भेदभाव नहीं रह जाता सब खुदावन्द करीम के बन्दे हैं।"

फिर बहस का रुख कशमीर की ओर पलटा, किन्तु यहाँ भी दोनों के ख्याल टकराते थे। जब उसके पासकहने को कोई बात नहीं रह गयी

तो वे फूलों की किस्में ब्यान करने लगे। ये रंग-बिरंगे फूल उनके कमरे के आगे बड़े सुन्दर गमलों में सजा कर रखे हुए थे।

होटल के आगे से, आँधी के झोंके की तरह कोई हॉकर चिल्लाता हुआ निकल गया :

"भूखों ने गोदाम पर कब्जा कर लिया, पुलिस ने गोली चला दी।"

उसकी तेज आवाज होटल की सीमा लाँघ कर भद्र-पुरुषों के कानों तक पहुंच गयी थी। दोनों बहस करने वाले खानदानी आदमी चौकन्ने हो गये। और उन्हें फूलों का ख्याल भूल गया। अब वह इस बात पर एक मत हो गये थे कि सरकार को कानून भंग करने वालों के साथ किसी किस्म की रिआयत नहीं बरतनी चाहिए। सिन्धी नवाबों ने ताश की बाजी खत्म करके अंग्रेज जोड़े को हॉकर की तेज तुन्द आवाज का मतलब खूब अच्छी तरह से समझा दिया था। मेम अब अपने कुत्ते को चूमने की बजाय उसके तीखे दाँतों का निरीक्षण करने लगी थी। सेठ भी बाहर बरामदे में आ गया था। आते ही उसने अपनी भेद भरी निगाह होटल के बाहर सड़क की ओर डाली फिर अजीब तरह से मुँह बिचका कर बोला :

"इन लोगों ने किसी कायदे कानून में रहना कभी सीखा ही नहीं है।"

मेरे हृदय के भीतर जाने क्या सोयी हुई चीज जाग उठी, मैंने उसकी बात को अनसुनी कर दिया और वह आँखें तरेरता हुआ सिन्धी नवाबों और अंग्रेज जोड़े के बीच में आकर खड़ा हो गया। वह सरकार और पूँजीपतियों को लूटने वाले लोगों की खासीयतें बयान करने लगा, मगर जल्दी ही बात ईरानी नाच की ओर घूम गयी। गोरे को बोलने का अच्छा मौका हाथ लगा था, उसने अमरीका के एक नंगे नाच का किस्सा छेड़ दिया :

वह बोला :

"पिछले दिनों हिन्दुस्तान के अमरीकन राजदूत ने नई देहली के किसी प्राईवेट होटल में एक पर्टी दी। पार्टी का नाम था : १,००० मिलियन बी० सी पार्टी। ईसा से अरब वर्ष पूर्व की एक दावत।

एक वृक्ष के नीचे खुले लान में आग जल रही थी, जिसमें सूअर का बच्चा भुन हो रहा था। आग के चारों तरफ से हू हा हू हा की जानवरों सी आवाजें आ रही थीं। अमरीकन मर्द औरतें नाच रहे थे। उन्होंने केलों के पत्तों और रीछ की खाल से मामूली सा अपने को ढंक रखा था। उनके हाथों में शेर के बच्चे थे।"

जब गोरे साहब की पश्चिमी तर्ज की अंग्रेजी से कहीं-कहीं बात का सिलसिला टूट जाता तो नवाब उसे धीरे धीरे बोलने को कहते। गोरा साहब एकदम चौकन्ना हो जाता और बात को बार बार दुहराने लग जाता।

"अपने महमानों के भी कपड़े उतार कर, अमरीकन वृक्ष की ओर बढ़े और सूअर का भुना हुआ बच्चा लम्बे लम्बे नाखुनों से तोड़ तोड़ कर खाने लगे। उनके चीखने और हाहू हाहू की अजीब तरह की आवाजों से महमानों की आँखों के आगे अरब बरस पहले की दुनियां मूर्तिमान हो उठी।"

"हा...हा...हा...वन्डर फुल..." कई गलों से एक साथ निकली आवाज ऐसे बिखर गयी, जैसे किसी मोटर का घिस चुका टायर अचानक फट गया हो।

मैं किसी हॉकर से कोई नयी खबर सुनने को उत्कंठित सा तेज कदम रखता हुआ बरामदे में टहलने लगा था।

नवाबजादे अब अंग्रेज जोड़े और सेठ के साथ व्हिस्की उड़ाने लगे थे। जब नवाबजादों की भारी आवाज से मेम का कुत्ता चौंक पड़ता तो वह उसे अपनी छाती से भींच लेती।

सन्ध्या घिर आने पर जब होटल की चहल-पहल बढ़ने लगी तो सेठ ने मुझे बुलाकर कहा—

"बैरा तुझे खाना दे जायेगा, मैं नाच से देर में लौटूंगा।"

मैंने सेठ की बात को अनसुनी करके अवज्ञा से मुँह दूसरी ओर मोड़ लिया। वह कुछ बड़बड़ाया और सिगार के तेज कश खींचता हुआ डाँसरूम की तरफ चला गया।

अंधेरा फैल जाने पर होटल के कई हिस्सों में बत्तियाँ जल्दी बुझ गयीं और कई हिस्से सफेद रोशनी से जगमगा गये। मैं खाने से निपटते ही पलंग पर लेट गया। सपरिंगों वाले पलंग पर लेटा हुआ जब मैं करवट लेने का यत्न करता तो मुझे काँटों पर पड़े होने का अहसास होता। मैं कभी किसी सोच का पल्ला पकड़ता और कभी किसी का। कई सोचें धुंधली सी दिमाग से हवा के झोंके की भाँति निकल जातीं, पर कई कितनी देर टिकी रह जातीं और फिर वह एक ठोस आकृति बनाने लगतीं। कोई ख्याल ऐसा आता जो आत्मा तक को झंझोड़ डालता और मुझे ऐसा लगता, जैसे मैं अंधकार में राह टटोल रहा हूँ।

अचानक मैं किसी आवाज से चौंक पड़ा। कमरे में रोशनी की, मगर कमरे में तो कोई नहीं था। आवाज बाहर बरामदे में से आ रही थी।

"मैं उस बदमाश फौजी का मुँह नोच डालूँगी। मैं उस वहशी पर।"

आवाज से यह बात स्पष्ट थी कि कोई औरत चिल्ला रही है। बाहर बरामदे में झाँक कर देखा, एक औरत को दो आदमी अन्धेरे कमरे की ओर खींच रहे थे और वह छूटने को छटपटा रही थी। मैं उसकी सहायता के लिए बाहर बरामदे में निकलने ही वाला था कि वह उन आदमियों के पंजे से छूट कर अन्धकार में लीन हो गयी।

बत्ती बुझाकर जब लेटा तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कि दिमाग में रेंग रही सोचें कोई स्पष्ट रेखा बनाने लगी हों। जाने कब सुबह का मंद-मंद प्रकाश मेरे अलसाये से शरीर को थपकियाँ देकर उठाने

लगा। आंख खुलते ही मेरी निगाह सेठ पर जा पड़ी जो जरा फासले पर सोया पड़ा था। उसके घिनौने चेहरे ने उसके भीतर की सारी मैल उगल दी थी और वह मुर्दा दिखाई दे रहा था। सबेरे का स्निग्ध प्रकाश उसके भद्दे मुँह पर फिटकार डाल रहा था। मैं उठकर उसके पलंग के निकट जा खड़ा हुआ। कोई एक शब्द गूँज उठा जो मेरे दिल की गहराई से फूट निकला था... "मुर्दा..." और फिर एक और... "मक्कार..."

मैं अपने रात के कपड़ों में ही बाहर आ गया। दूसरे क्षण मैं लाहौर की सड़कों पर स्वच्छन्द घूम रहा था।

होटल काफी दूर रह गया था। मेरी निगाह उन घरों पर जा टिकी, जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में खड़े किसी भयानक उथल-पुथल का आभास कराते थे। उनकी दिशा बदल गयी थी, मगर फिर भी आँखें उन्हें पह-चानने में धोखा नहीं खा सकती थीं।

कभी वहाँ बच्चों की किलकारियों और नौजवानों के ढोलक पर हीर गाने के स्वर गूँजा करते थे। मर्द औरतों की बे-परवाह हँसी बहार की तरह लहलहा उठती थी।

...सभी एक साथ त्योहारों की खुशियों में शरीक होते थे।...और फिर वह अन्धकार पूर्ण दिन आए जब आदमी को आदमी का शत्रु बना कर एक देश के दो टुकड़े कर दिए गए थे।

आगे फुटपाथ पर जाड़े से सिकुड़ा बैठा एक पागल अपने पास खड़े कुत्ते को डार्लिंग कह कर पुकार रहा था मगर कुत्ता उसे भौंक रहा था और पागल बेपरवाह सा मुस्कराए जा रहा था।

शहर के हर एक मोड़, दुकानों और घरों के आगे लोग छोटी-छोटी टोलियों में खड़े कल की घटना की चर्चा कर रहे थे। लोगों के मुँह पीले और क्षीण थे। मगर इरादों में तेज झलकता था। अचानक

लोगों ने हवाई जहाजों की एक गूँज सुनी और उनकी निगाहें आकाश की ओर टिक गयीं।

एक तांगे वाला चीख उठा :

"अमरीका के जहाज।"

एक लम्बी दाढ़ी वाला मुल्ला, जो तेजी से अपने रास्ते चला जा रहा था, रुक कर हैरानी से बोला :

"अमरीका क्या ?"

"हजारों मील दूर का एक देश। सात समन्दर पार से जो हमारे आकाश पर मँडराने लगा है।"

तांगे वाले का स्वर गम्भीर हो गया था—"अमरीकन सब को नंगा नाच नचायेंगे।"

मुल्ला की ठंडी खोपड़ी किसी गर्म ख्याल से गर्मा गई।

शहर के सब मार्ग मेरे लिए खुले थे। टोलियों में खड़े आदमी मेरे पहरावे और डीलडौल को देखते हुए आपस में कानाफूसी करने लगे थे। लेकिन उनकी निगाहों में शत्रु-भाव नहीं वरन् मित्रता का भाव साफ झलकता था।

सेठ की वह बात मेरे कानों को आँच की तरह लगने लगी कि अब भी कोई हिन्दोस्तानी यहाँ खुले-आम नहीं घूम सकता।

मुगलों की सराय के निकट पहुंच कर मुझे लगा, जैसे मेरे जीवन के दिन फिर लौट आए हों, जब मैं पहली बार घर से भाग कर यहाँ आ निकला था और सराय में रहने वाले लोकोशाप के मजदूरों ने मेरे लिए अपने दिल के द्वार खोल दिए थे।

सराय सर्वथा वही थी लेकिन भिखारियों और बेकारों की तादाद बढ़ गयी थी, इनमें अधिकतर वे लोग थे जिन्हें शरणार्थी बन कर यहाँ आने पर सिर छिपाने को भी ठौर नहीं मिली थी।

फिर एक गूंज सुनाई दी। ऊपर देखा, आकाश साफ था। सराय के बाहर आकर लोग गूंज की दिशा खोजने का यत्न करने लगे। आखिर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि यह गूंज मनुष्यों की आवाज से पैदा हुई थी। लोग छोटी-छोटी टोलियों में स्टेशन के निकट एक चौराहे में जमा हो गये। मैं भी वहाँ पहुँच गया था। सैकड़ों हाथ एक दिशा की ओर संकेत कर रहे थे...

"जलूस......"

किसी ने पूरी तरह से संकेत का मतलब समझाते हुए कहा :

"भूखों का जलूस........."

"एक चेचकरू चेहरे वाले आदमी ने अचानक मेरी ओर घूर कर देखा और फिर मेरा हाथ पकड़ लिया। उसने पहले लोगों की ओर सहम कर देखा, किन्तु फिर वह अपनी भद्दी आवाज में गुर्राया :

"जासूस......" वह उस बिगल की तरह चीखा जिसमें अचानक कंकर अटक गया हो......हिन्दुस्तानी......"

टोलियों में खड़े लोगों ने मेरी ओर घूर कर देखा और फिर वह प्रश्न-सूचक दृष्टि से एक दूसरे की ओर ताकने लगे। इतने में एक लाल वर्दी पहने कुली आगे बढ़ा और एक झटके के साथ मेरा हाथ उस आदमी के पंजे से छुड़ाते हुए गर्ज उठा :

"कुत्ता......सी० आई० डी०......"

न जाने कब वह आदमी भीड़ में खो गया, जलूस सड़कों पर बढ़ने लगा, समन्दर की एक ऐसी लहर की भाँति, जो अपनी आखिरी सीमायें छू गयी हो।

फिर मशाल की तरह प्रज्ज्वलत हजारों आंखों ने देखा कि उनकी पंक्तियों में कोई हिन्दोस्तानी आ मिला था।

जोसेफ

शंकराचारिया के मंदिर से निकलते ही शीतल वायु का एक झोंका आया। और मुझे कंपा सा गया। मुझ जैसे गर्म प्रदेश से आने वाले यात्री के हृदय में भला क्यों न आनन्द की हिलोर उठती। मन्दिर के पैरों में बहती पेरियार नदी के किनारे घूमने के किए मैं पच्छमी द्वार को अभी लाँघ ही रहा था कि एक श्यामवर्ण लड़के ने मुझे पुकारा :

"बाबूजी ! मातृभूमि..."

पहले तो मैंने लड़के की ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं, जब वह बहुत पीछे पड़ गया, तो मेरी निगाह अखबार पर पड़ी—

—क्या है ?—

—मातृभूमि है बाबू !—

—क्या भाषा है ! मैं जानूँ तब न !—

"नहीं बाबू ! एक अखबार ले लो। ये हमारी मलियालम भाषा का अखबार, है सिर्फ एक इकन्नी।"

लड़के पर मुझे झिल्लाहट हो आयी।

मैंने कहा : "जब मैं पढ़ ही नहीं सकूँ, तो लेने से क्या लाभ ?"

लड़के ने फिर भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। वह नदी के किनारे तक मेरे पीछे-पीछे चला आया। वायु के झोंके बराबर आ रहे थे, लेकिन लड़के ने मेरा ध्यान बाँट दिया था। उस लड़के की उम्र कोई दस बारह बरस की रही होगी। हिन्दी वह बड़ी स्पष्ट बोलता था। नदी की एक

चट्टान पर पहुंच कर मैंने देखा कि वह किसी अन्य आदमी से बातें करने में लग गया है। निश्चित होकर मैं चट्टान पर बैठ गया। नदी नारियल, खजूर और ताड़ के वृक्षों से ऐसे घिरी हुई थी जैसे कि वह उनके संरक्षण में हो। और वे वृक्ष उसके स्वच्छ निर्मल पानी की रक्षा कर रहे हों।

प्रकृति में लीन मैं कभी किसी कवि की पंक्तियों को गुनगुनाने लगता, और कभी मेरे हृदय से उठे मनोभाव ही कविता का रूप धारण कर जाते। और मैं सोचने लगता : एक नीरस आदमी भी इस प्राकृतिक-छटा के आगे नत मस्तक होकर रह जाए। सामने पानी में तैरती आ रही छोटी सी नौका में कुछ नंगे बदन आदमी फटी हुई ढोलक सी आवाज में गा रहे थे। भाषा एक दम परायी होते हुए भी मैं उनके गाने पर झूमने लगा था।

एकाएक मेरे पीछे से हंसी छूटी और मैंने चौंककर पीछे की ओर देखा, वही अखबार वाला लड़का खड़ा हंस रहा था।

"तुम अभी यहीं थे क्या ?—मैंने सहज भाव से कहा। मैं कुछ इस बात से झेंप सा गया था कि मेरा पागलों की तरह गुनगुनाना सुनकर लड़का क्या सोचता होगा !

"मैं अखबार दिये बगैर कैसे चला जाता ? मातृभूमि लो न बाबू !" लड़के के स्वर में याचना थी।

मैं सोचने लगा कि आखिर बात क्या है। लड़का मेरे पीछे क्यों पड़ गया है ? मैंने बिना किसी परिणाम पर पहुंचे इकन्नी उसके हाथ में थमाई और अखबार लेकर अपनी जेब में डाल लिया। लड़का यह कहते हुए कि अखबार को खोना नहीं, सम्भाल कर रखना, कूदता-फाँदता नारियल के झुण्डों में आँखों से ओझल होना ही चाहता था कि मेरे दिमाग में जाने क्या ख्याल आया कि मैंने उसे पुकारा : "रुको जरा ! इधर आओ तो......"

लड़का एक ही छलांग में मेरे पास आकर खड़ा हो गया।

"तुम्हें कोई गीत गाना आता है...?"

"गीत ?—" उसके चेहरे पर एक सुर्ख सी लकीर फिर गयी। फिर वह गुनगुनाने लगा :

—ओमना तिंगल की डावो, नल्ला कोमल तामर पूवो, पूविल निरंजाँ मधुवो !...

गीत की कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाकर वह चुप हो गया और बोला :

"यह हमारी एक लोरी है—इसका अर्थ बताओ तो...इससे पहले कि वह मेरी बात सुनता, भागता हुआ मेरी आँखों से ओझल हो गया।

उसी सन्ध्या को जब मैं कालड़ी के बाजार में खाने की तालाश में घूम रहा था, तो वह लड़का दूर से मुझे आता दिखाई पड़ा। अब वह खाली हाथ था। और वही निश्छल सी हँसी उसके चेहरे पर खेल रही थी। वह मेरे पास आकर खड़ा हो गया। मैंने पूछा :

"अब कुछ और मेरे पास बेचने आये हो !" उसके अहं को जैसे चोट लगी हो। अपनी तीक्षण और चंचल आंखें मटकाता हुआ वह बोल. :

"सुबह मैंने आपसे एक इकन्नी ली थी। इकन्नी न लेता तो अखबार की बात अब तक भूल भी गये होते। मेरी बात ठीक नहीं है क्या ?"

उसके चेहरे पर मासूम भावों की एक अजीब झलक थी। उसकी युक्ति के आगे अपनी बात मुझे इतनी तुच्छ मालूम पड़ी कि पछतावा हो उठा। मैंने उससे कहा :

"मैं यूं ही कह बैठा था, बात तो मन पर न लाना !" और फिर जब मैंने उसके कन्धे थपथपाए तो वह खिलखिला कर हँस दिया।

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मैंने पूछा

"औसेप ! नदी के पार मेरा खेत है, और वहीं पर ही घर।"

"जब तुम्हारा खेत है, तो तुम अखबार क्यों बेचते हो ? स्कूल में पढ़ने क्यों नहीं जाते ?"

"स्कूल में पिता पढ़ने देना नहीं चाहता। मैं सुबह अखबार बेचता हूँ, और उसके पश्चात स्कूल में पढ़ने चला जाता हूं।"

"तुम्हारा पिता क्यों नहीं पढ़ने देना चाहता। पढ़ाई तो अच्छी चीज है।"

"वह कहता है—पढ़-लिखकर लड़के घर से भाग जाते हैं। मेरा एक चाचा पढ़ लिखकर पादरी बन गया था। पहले वह पूरब देश के किसी गिर्जे में कई बरस रहा, और अब अपने गाँव के गिर्जे में आ गया है, और यहीं लोगों को प्रभु मसीह का उपदेश देता है। मैं भी भाग कर अपने चाचा के पास पूरब चला गया था। और दो बरस वहाँ रहा। वहीं मैंने हिन्दी बोलना सीखा था।"

वह मेरे चेहरे के भावों को ताड़ने लगा कि मैं उसकी बात में दिलचस्पी भी ले रहा हूं।

मैंने कहा..."अच्छा...तो..."

"वहाँ मेरे रामू, श्यामू और नत्थू तीन लंगोटिया यार थे। हम सारा दिन गोमती नदी के किनारे आवारा घूमते, मछलियों का शिकार किया करते थे, या फिर जंगल में जाकर चित्तकबरियाँ चिड़ियां पकड़ लाते थे। वे तीनों मुझे बहुत याद आते हैं। दिल वहीं भाग जाने को करता है। मेरे भी पंछियों से पंख हों तो उड़कर जंगल और नदियां लांघता वहां पहुंच जाऊं।"

वह उड़ने की कल्पना में इतना लीन हो गया कि जैसे उसे पंख लग गये हों और वह नीलाम आकाश में उड़ता हुआ बादलों में खो जाना चाहता हो।...

मैंने बात पलटते हुए कहा:

"क्या मुझे बताओगे, यहां अच्छा खाना कहाँ पर मिलेगा। और कौन सी चीजें खाने को मिलेंगी।"

मैंने सुबह से कुछ नहीं खाया था, सिर्फ दो-चार आम और केले ले लिए थे। मैंने औसेप को अपनी बात से उत्साहित पाया। वह कहने लगा—

"मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें बढ़िया होटल पर ले जाऊंगा, लेकिन आपके माफिक खाना फिर भी नहीं मिलेगा।"

हम एक होटल में घुसे। औसेप मेरा पथ-प्रदर्शन करने लगा। वह हरेक चीज के बारे में मुझे बतलाता गया। और जब मैंने उसी पर छोड़ दिया तो उसने मेरे लिए इडुली, उप्पमा और दोशा का आर्डर दे दिया।

मैंने उससे पूछा :

"तुम क्या खाओगे। मंगा लो।"

"हम महमानों से कुछ नहीं खाते, हमारे यहाँ ऐसा रिवाज नहीं है" वह बोला।

मैं उसके भोलेपन पर हंस दिया। और उसे कहा कि एक प्याला चाय का पी लो। क्षण भर के लिए मुझे महमान न समझ कर, अपने गांव का ही समझ लो।

लड़का मेरी बात से खिलखिला कर हंस दिया। उसने चाय पीना स्वीकार कर लिया। होटल वालों से मोल भाव करने में वह बड़ा तेज निकला। और उसने मेरा एक पैसा भी फालतू खर्च नहीं होने दिया।

यह सुनकर वह एकाएक उदास हो गया कि मैं सुबह यहाँ से चल दूंगा। और फिर वह मुझे शंकर कालिज जाने वाली बस पर चढ़ाकर अनमना सा घर को लौट गया।

शंकर कालिज पहुंचने पर पता चला कि मेरे मेजबान चिर से मेरी बाट देख रहे हैं। मुझे अनमना सा देखकर बोले :

"क्या बात है, खोये खोये से क्यों हो ?"

"कुछ नहीं, यूं ही। मेरी एक अखबार बेचने वाले लड़के से आज दोस्ती क्या हुई कि बिछुड़ते समय दुःख हुआ।"

मेजबान को मेरी बात से सन्तोष हुआ कि कोई गम्भीर बात नहीं थी। वे निश्चिंत हो गये। लेकिन उस लड़के की भोली-भाली सूरत सारी रात मेरी आंखों में घूमती रही। जब भी आँख खुली नहीं कि वह मेरे सम्मुख आकर पुकारता सा लगता :

"मातृभूमि लो न बाबूजी।"

ऐसा लगता था कि अपनी धरती का पवन, पानी और प्यार जिस तरह उसके हृदय में रचा हुआ था, वैसे ही पूरब देश की मिट्टी की सोंधी महक भी उसमें घुल मिल गई थी। उसके पूरबी बाल-सखा अब स्वप्नों में आकर उसकी स्मृतियों को कुरेदते थे। सैकड़ों कोस दूर से उसे पुकारते थे। पूरब देश से आने वाले किसी भी आदमी से, उसके दोस्ती गांठने के पीछे वास्तव में यही एक रहस्य छिपा हुआ था।

सुबह तड़के ही मैं अंगमाली स्टेशन पर जाने के लिए उठ बैठा। बाहर मोटर तैयार खड़ी थी। और पानी के छींटे पड़ रहे थे। चारों ओर अभी अंधेरा फैल रहा था। वृक्षों के पत्तों पर टपकती पानी की बून्दें अजीब सरसराहट पैदा कर रही थीं। हलके से हवा के झोंको से यह सरसराहट कानाफूसी सी करती लगती थी। मेरा दिल प्राकृतिक-रमणीयता में ऐसे रम गया था कि रात भर का उनींदा महसूस नहीं होता था। अब मैं प्रकृति में खोकर अपने नन्हें दोस्त औसेप को भूल जाने का प्रयास कर रहा था। उसके लिए अधिक देर तक व्याकुल रहने की कोई बात भी नहीं थी। कुछ दिन के पश्चात मैं यहाँ से सैकड़ों मील की दूरी पर होऊंगा। और वह शायद मेरी याद से एक बार भटका फिर कभी आये ही न। पर नहीं......उसके चेहरे का सा भोलापन मैंने बहुत कम बच्चों में देखा है। और फिर उसकी निश्च्छल, मासूम हसी.........।

...मेरे मेजबान ने जब कहा कि मेरा सारा सामान उन्होंने मोटर पर रखवा दिया है, तो फिर भी मैं कमरे में इधर-उधर निगाह दौड़ाने लगा। जैसे कोई चीज़ खोये जा रहा हूँ......लेकिन मातृभूमि भी मैंने सम्भालकर बक्से में रख लिया था। फिर क्या चीज रह गयी। घड़ी की सुई ने मुझे चेताया न होता, तो मैं कमरे में ही भटकता रहता। असल में मेरा सारा सामान मोटर पर पहुँच गया था, पीछे कुछ भूल जाने का मुझे सिर्फ भ्रम सा हो गया था।

अंगमाली तक आते हुए बारिश नहीं थमी। स्टेशन पर पहुंचा तो बादल कुछ छंट गये थे। प्लेटफार्म पर मुसाफिरों की बेहद भीड़ देखकर कुछ घबराहट हुई।

गाड़ी आने पर किसी तरह मैं सवार हो गया, लेकिन पैर टिकने को भी मुश्किल से जगह मिल पायी। इसी अफरातफरी में एक औरत की मुर्गी छूटकर मेरे पैरों में आ गयी। अचानक पैर उस पर रखा गया। मुर्गी वाली बुढ़िया चिल्लाने लगी। तभी किसी ने गाड़ी के भीतर घुसते हुए मुझे ऐसा धकेला कि मैं उस मुर्गी वाली औरत पर गिरते हुए बचा।

"मातृभूमि लो न बाबू।"

मैंने भीड़ में द्वार की ओर निगाह दौड़ाई तो औसेप भीड़ में बुरी तरह फंसा मेरे साथ ठिठोली कर रहा था। "मैंने तुम्हें इस डब्बे में सवार होते हुए देख लिया था।" वह बोला।

वह बारिश से बुरी तरह भीगा हुआ था। आखिर उसने मुसाफिरों को ढकेलते हुए मेरे तक पहुँचने की जगह बना ली थी। इतने में गाड़ी ने सीटी दी। औसेप ने एक पोटली मेरे हाथ में थमाते हुए कहा :

"पक्के हुए धान हैं...माँ ने तड़के उठकर आपके लिए बना दिये थे।"

इतना कहते ही वह द्वार की ओर लपका। और छलांग लगाकर नीचे प्लेटफार्म पर कूद गया। मैं भी दो एक को धकेलता हुआ खिड़की

की तरफ लपका। उसने मुझे नन्दि (धन्यवाद) कहने का भी मौका नहीं दिया था। जब तक गाड़ी उसकी आंखों से ओझल नहीं हो गयी, वह प्लेटफार्म पर खड़ा हाथ हिलाता, अपनी वही प्यारी मुस्कराहट बिखेरता रहा। उसके चेहरे पर बाल-सुलभ मुस्कराहट क्या थी कि मेरे हृदय की गहराईयों में कोई लौ प्रज्वलित करती गयी।

खान-गाजी

सावन माह के पहले छींटे पड़े। धरती से गर्मी ने अपनी भड़ास छोड़ी। मैंने हड़बड़ाकर अपने को अर्द्ध-बेहोशी की दशा में सिवल अस्पताल के वार्ड नं० तीन के रोगियों में घिरा पाया। मुझे पेट में असह्य पीड़ा का दौरा उठा था।

—मैं कहाँ हूँ! —मेरी निगाह इर्द-गिर्द पड़ते ही दोस्तों के चिंतातुर चेहरे दृष्टिगोचर हुए।

सहसा हृदय में आत्म-संतोष का भाव जागृत हो उठा। और अब मैं निश्चिंत हूँ कि मेरे दोस्तों ने मुझे अकेला नहीं छोड़ दिया है।

आप्रेशन......मेरे कानों में पीड़ामय शब्द गूंजा। और मजबूत हाथ मेरा पेट चीर रहे लगे। यद्यपि मैं चेतनावस्था में आ गया हूँ, किन्तु फिर भी भौचक्का सा भाँति-भाँति के रोगियों की लीला देख रहा हूँ। एक लम्बी, मजबूत डील-डौल का व्यक्ति, जिसे देखकर सहसा कोई भी उसके पठान होने का अनुमान लगा सकता है...मेरी पीठ को थपथपाते हुए कहने लगा :

"रत्ती भर चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। सूई के चुभने सी पीड़ा भी नहीं होगी। और सारा रोग जड़मूल से जाता रहेगा।"

मैं उस लम्बे मनुष्य को एकटक जिज्ञासा और सहानुभूति से निहारने लगा। उसकी भूरी आँखों में दिलासा और सहानुभूति के भाव उमड़े लग रहे थे। फिर वह मुझे छोड़कर दूसरे रोगियों से बातों में लग गया।

जाने कितने रोगियों की मर्मान्तिक पीड़ा को वह अपनी आँखों में समीए हुए हैं।

मुझे तैयार करके आप्रेशन थीएटर ले जाया गया। कोई खतरनाक आप्रेशन हो रहा था। और मुझे घन्टा भर बाहर बरामदे में ठहरा कर वार्ड में लौटा लाया गया।

अब मैं खुली आँखों से अपने इर्द-गिर्द देख सकता था। अपने देश की दुर्दशा का जो चित्र मेरे दिमाग में पूरी तरह से अंकित था, वार्ड नं० तीन में आकर वह कुछ धुंधला सा दीख पड़ा। किसी रोगी की दशा बिगड़ जाने पर इस वार्ड का कोई डाक्टर ब-परवाही नहीं बरतता। नर्सों का व्यवहार रोगियों के प्रति काफी नर्मी का है, और सब से बड़ी बात तो यह कि ला-इलाज रोगियों के मुंह पर भी जीने की अदम्य लालसा के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं।

मुझे दो दिन के भीतर ही उस पठान के वार्ड नं० तीन के साथ अटूट रिश्ते का अभास हो गया। वह रात-दिन रोगियों के पास आकर उनके दुःख, पीड़ा का थाह लेता, आहों कराहों का साझीदार बना रहता था। किसी भी ऐसे कर्मचारी को वह बुरी तरह डाँट देता, जो रोगियों के प्रति कटुता या बे-परवाही से पेश आता हो।

मैं अभी उसके सम्बन्ध में कुछ जान लेने का अवसर ही ढूंढ रहा था कि वह एक सन्ध्या के समय पलंग के समीप पड़े स्टूल पर बैठते हुए कहने लगा :

"मेरा नाम खान गाजी है।" फिर वह मेरे हाथ की किताब की ओर बड़ी भूखी निगाहों से देखने लग गया। मैं पिछले दो दिनों से उसके बारे में इतना जरूर जान गया था कि उसे सब लोग खान साहब कहते हैं। बड़े डाक्टर के 'राउण्ड' के समय वह साथ होता था। और प्रत्येक रोगी की दुखती रग का जितना ज्ञान उसे था, किसी डाक्टर को

भी क्या होगा। हाउस सर्जन छोकरे खान गाजी का पानी ढोते लगते थे। उसे किताब को निर्निमेष निहारते हुए देखकर मैंने पूछा :

"खान साहब किताब पढ़ोगे ?"

"काश, मैं पढ़ा होता ! और फिर मुझे इतना सूनापन कभी नहीं खलता।"

"तो तुम पढ़ना नहीं जानते !" मैंने उत्कंठित होकर पूछा।

"नहीं !......मैं दस बरस की अबोध आयु में अनाथ हो गया था और जीवन के कँटीले राह पर भटकने के लिए छोड़ दिया गया था।"

खान गाजी को जानने की मेरी इच्छा और प्रबल हो उठी। असाधारण दीखने वाले पठान की कोई भी बात मुझ से छुपी क्यों रह जाए, इसी लिए उसे कुरेद लेने को मेरा दिमाग कोई तानाबाना बुनने लगा। मैंने पूछा :

"तुम्हें क्या बीमारी थी कि अस्पताल की शरण लेनी पड़ी।"

मैंने यह प्रश्न जान-बूझ कर पूछा था क्योंकि मुझे उसके रक्तिम चेहरे पर किसी बीमारी के लक्षण दिखाई नहीं दिये। दूसरा, मैं इस वार्ड पर डाक्टरों से भी बढ़कर उसके अधिकार के बारे में जानना चाहता था।

"मेरा एक फेफड़ा खराब हो गया था। जब कई महीने ज्वर नहीं ही उतरा तो दोस्तों ने मुझे यहाँ दाखिल करवा दिया।"

"पर तुम्हारे शरीर पर तो किसी रोग का कोई निशान ही नहीं है।"

"देखने को ऐसा ही लगता है, लेकिन आप्रेशन हुए भी दो वर्ष हो गये। डाक्टर ने मेरा खराब फेफड़ा निकाल दिया था। मुझे इस वार्ड में ढाई वर्ष हो गये हैं"

"ढाई वर्ष !" मैं चौंक उठा।

"हाँ ! ढाई बरस ! मेरे साथ इन लोगों को अधिक ही रियायत

बरतनी पड़ी है, वैसे साल भर के रोगी तो कई मिलेंगे यहाँ।"

"तुम्हारे साथ रियायत क्यों ?"

"क्योंकि मैं एक राजनैतिक पीड़ित हूँ। मैंने अपनी जवानी के बीस बरस कारावास की लौह-सीखचों के पीछे गुजारे हैं। पठान का बच्चा जिस राह को पकड़ ले, फिर छोड़ता नहीं।"

उसके यह बात कहने भर की देर थी, मैं एक झटके के साथ उठकर बैठ गया। जैसे किसी ने मेरे शरीर को बिजली छुआ दी हो। मेरा सारा शरीर एक बार झनझना सा उठा। खान गाजी ने मुझे पकड़कर लिटाना चाहा किन्तु उसके सामने मुझे लेटने में हीनता का आभास हो रहा था। मैं असाधारण व्यक्ति को पहचान कर उसके सामने नतमस्तक हो गया था।

फिर वह रोज मेरे पास आकर बैठ जाता और अपनी लम्बी कहानियाँ कहता रहता। अस्पताल के वातावरण में वह कहानियाँ कदाचित मुझे ऊबने से बचा लेतीं। और मैं कुरेद कुरेद कर पूछता जाता।

उसने मुझे यह भी बताया था कि सरकार की ओर से साठ रूपये मासिक पैन्शन भी उसे मिलने लगी है। पर वह सारा पैसा वार्ड नं० तीन के रोगियों पर खर्च कर डालता है। अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखता।

एक दिन उसने द्रवित कर देने वाली एक औरत की कहानी कहते हुए कहा :

"जहाँ मैं अस्पताल में बड़े अद्भुत किस्से होते हैं, जो हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ जाते हैं। इसी वार्ड के ऊपर एक जच्चा वार्ड भी है। यह घटना उसी वार्ड से सम्बन्ध रखती है।

एक बार एक पुलिस अफसर की बीवी जच्चा वार्ड में दाखिल हुई। उसने एक सुबह डाक्टरों और नर्सों की एक अच्छी खासी टुकड़ी की देख-

रेख में नव-शिशु को जन्म दिया। शायद उसे वह चिर प्रतीक्षा के बाद, लम्बे कष्टमय जीवन में एक नन्हा साथी मिला था, जिसके स्वर्णिम शरीर में उसी का रक्त प्रवाहित हो रहा था। उसे शारीरिक यातनाएं सहते हुए एक फल मिला था—कोमल, मीठा और आनन्दमय।

उसका नाम मालती था। और वह अपने शराबी पति से बहुत दुखी थी। वार्ड की डाक्टर और नर्सों से उसकी गहरी दोस्ती हो गयी थी। वे उसे बहुत प्यार करती थीं। उसका नन्हा शिशु उनके स्नेहमय हाथों से परिचित हो गया लगता था। और वे उसे हर समय उठाये ही रहती थीं।"

एकाएक खान गाजी बात कहते रुका। और उसका चेहरा नीचे को ढुलक गया। लेकिन जल्दी ही सम्भल कर वह बोला :

"एक दिन क्या हुआ कि एक युवती, कन्या को जन्म देकर मुसीबत में फंस गयी। वार्ड में जो औरतें हरामी बच्चे जनकर छोड़ जाती थीं, उनमें से लड़कों को गोद लेने वालों की तो भीड़ लगी रहती थी, किन्तु लड़की को कोई ही लेता था। वह युवती वार्ड में हाथ जोड़ती, बिनती के स्वर में याचना करती फिर रही थी कि कोई उसकी बच्ची को गोद ले ले। वह उसे साथ लेकर समाज में नहीं रह सकती। और न ही उसके बाप का नाम ही बता सकती है।

मालती ने एक नर्स से पूछा कि यह लड़की इतनी परेशान क्यों है, जबकि बच्चा उसी का है, उसी की कोख से जन्मा है।

"बच्चा उसके पाप की निशानी है। हरामी बच्चा है। ऐसे किस्से तो यहाँ रोज होते हैं।"

"तुम जरा उस युवती को मेरे पास तो बुलाओ।"

नर्स उस क्षीण युवती को मालती के पास बुला ले आई। बातचीत के लहजे और रंग-ढंग से वह युवती शिक्षित लगती थी।

"अपनी संतान किसी दूसरे के हाथ सौंपते तुझे क्या सुख होगा ?" मालती का पहला सवाल था ।

युवती कुछ क्षण चुप्पी साधे खड़ी रही। उसे कुछ भी नहीं सूझा कि क्या कहे । तत्पश्चात मालती ही बोली :

"एक शर्त पर मैं तुम्हारी बच्ची को गोद ले सकती हूं ।"

उस युवती की आंखो में जैसे कोई चमक आ गयी हो। भावावेष में बोली :

"शर्त क्या होगी ?"

"शर्त यह है कि जब लड़की पाल-पोस कर जवान हो जाए तो उसे फौरन मेरे पास से ले जाना । फिर तो समाज तुम्हें कुछ नहीं कहेगा न ।"

"हां, मंजूर है । फिर मैं समाज की कोई परवाह नहीं करूगी । मैं उससे लोहा लूँगी । और खुलेआम कहती फिरूंगी : "ये मेरी बच्ची है, मेरी कोख से जन्मी है । छीनो मुझ से कैसे छीनते हो ?"

मालती ने देखा कि युवती उत्तेजित हो उठी है । यद्यपि वह भली प्रकार समझती थी कि यह उसका सिर्फ ढोंग मात्र है। वह हरामी लड़की को किसी तरह टालना चाहती थी ।

आखिर मालती ने हराम की बच्ची को गोद ले लिया। अब उसे दो नये बाजू मिल गये थे । उस बच्ची की वास्तविक माँ रोज एक बार आकर उसे देख जाती थी ।

सन्ध्या के समय जब मालती का पति आया तो उसके पहलू में एक नया शिशु देखकर आश्चर्य-चकित रह गया ।

"ये किस का बच्चा है ?"

"अब मेरा ही है । गोद ले लिया है । क्यों आप को कोई इतराज है ?"

"आखिर बच्चा किसका है ?"

"जिसके मां-बाप उसका बनने से मुँह छिपाते है ।"

"तो अब तुम हरामी बच्चों को पालने का काम करोगी।"

"जी..." मालती जाने कैसे अपना सारा साहस बटोर कर कह गई।

अभी पति-पत्नी का झगड़ा चल ही रहा था कि गोद ली लड़की की युवती माँ द्वार पर आते ही ठिठक कर खड़ी हो गयी। जैसे उसे काठ मार गया हो।...किन्तु वह अधिक देर तक वहां खड़ी नहीं रह सकी। वह पागलों की तरह चीखती-चिल्लाती बाहर को भागी और द्वार लांघते ही किसी चीज से उलझ कर गिर पड़ी। नर्सों ने उसे सम्भाला। अब भी वह चिल्लाती जा रही थी।

उस समय सारे वार्ड में सनसनी फैल गयी, जब पता चला कि वह हरामी बच्चा मालती के पति जोगिन्दरपाल का था।

तीसरे दिन वह गोद ली लड़की जाने कैसे मर गयी। अब मालती का एकाकी नन्हा साथी रह गया था, या फिर हृदय के भीतर का गहरा घाव।"

खान गाजी की कहानी खत्म होते ही हमारे बीच एक अजीब चुप्पी छा गयी। तभी तन्द्रा टूटी जबकि किसी दूसरे मरीज के बुला लेने पर उसको मेरे पास से उठकर जाना पड़ा।

दूसरे दिन वार्ड में सन्नाटा कैसा! रोगियों का एक दूसरे को प्रश्न-सूचिक निगाहों से देखने का आखिर कोई कारण भी हो। सभी किसी अप्रत्याशित बात से अनुकम्पित। लेकिन मौत तो कोई नई बात नहीं है वार्ड के लिए। हर रोज नये आप्रेशन होते हैं, सफल और असफल। नर्सों की चाल में जरा भी धीमापन नहीं आया। उनके हृदय की कौन जाने। वे भी वार्ड के साथ संतप्त हैं या रोज हृदय विदारक घटनाएँ देखने की आदी हो गयी हैं।

उधर खान गाजी लोप है। उसे सब जगह ढूँढ लिया गया किन्तु कहीं नहीं मिला।

ट्रप...ट्रप...फर्श पर एंग्लो-इन्डियन वार्डन के बोझल सेन्डलों की आवाज। वार्ड में दाखिल होते ही वह चिल्लाई :

"खान साहब कहाँ गया ? उसे कहो अपने दोस्त का एक बार मुँह ताक ले—नहीं तो लाश मुर्दा घर चली जाएगी।"

वार्डन का एकदम रूखा बोल सारे वार्ड को बर्फानी शीत की तरह कंपा गया। भला कोई किसी की मौत पर ऐसे बोला करता है ? क्या हुआ मरने वाला लावारिस था, उसकी लम्बी बीमारी में सगे-सम्बन्धी भी साथ छोड़ गये। फिर खान की उस दिवंगत से दोस्ती का ही कुछ लिहाज किया होता। खैर ! जाने दो...राम जी का आप्रेशन हुआ और वह मर गया। उसे भोले की बीमारी थी। साल भर उसने खानगाजी का संग निभाया था। डाक्टर उसका आप्रेशन करने से कतराता था किन्तु उसके जोर देने पर डाक्टर ने आप्रेशन किया कि उसकी एकबार गयी चेतना फिर नहीं लौटी।

मेरा भी आप्रेशन हो गया। पीड़ा का जैसे अन्त ही नहीं था। घाव भरता गया, लेकिन पीड़ा बढ़ती गयी। मेरा ही शरीर और मन पीड़ा से विह्वल नहीं था अपितु सारा वार्ड ही खानगाजी के एकाएक लोप हो जाने से संतप्त था। नर्सों के हाथ मरीजों को छूते समय काँप जाते थे। डाक्टर अप्रेशन करते समय ठिठक जाते थे। वार्ड के मरीजों के भाई बन्धु, रिश्तेदार, छोटे से लेकर बड़े कर्मचारी तक—सबकी आँखें खान गाजी को ढूँढ़ती थीं। उसकी सहानुभूति को खोजती थीं।

फिर भी एक दिन वार्ड नं० तीन में प्रकाश की कोई किरण सी फूटी। खान गाजी का कहीं से प्राप्त हुआ हलफिया बयान वार्ड का बड़ा डाक्टर सेन पढ़कर सुना रहा था। जिसके अनुसार खान गाजी ने अपनी साठ रुपये की सरकारी पेन्शन वार्ड नं० तीन के नाम वसीयत कर दी थी।

डाक-पत्थर

वह मुझे एकाएक चकरोता रोड पर मिल गया था। सड़क के दोनों ओर चील और सफेदे के वृक्षों की लम्बी कतारें चली गयी थीं और सामने ढलान दिखाई देती थी। दूर कहीं-कहीं फैले हुए चाय के बागान दृष्टिगोचर हो आते थे, तारकोल की सड़क भट्टी की तरह आग उगल रही थी। मई का महीना था। हम दोनों वृक्षों की छाया में चुपचाप सड़क के समानान्तर चले जा रहे थे। अकस्मात् जब कभी हम एक दूसरे की ओर ताकते, तो हमारी आँखों में एक दूसरे से बातें करने की आकांक्षा झांकने लगती थी।

उसके मुँह पर शीतला के हल्के-हल्के दाग थे और गाल चिपक गये थे। आँखें गड़्हों में धंसी हुईं। उसके नंगे पैरों पर धूल की मोटी तह जम गयी थी। छोटे मोटे सामान की एक गठरी उसने पीठ पीछे बांध रखी थी।

आगे चल कर सड़क का एक मोड़ था। उस मोड़ से सड़क लाँघकर वह मेरे बराबर आकर चलने लगा। अत्यधिक गर्मी के कारण चेतनाशून्य से हम न जाने कितनी देर एक दूसरे की ओर यूँ ही निहारते रहे, फिर जैसे उसे कोई बात अचानक सूझ आयी हो, वह मुझ से बोला—कहां जा रहे हो दोस्त ?

पहले तो मैं एक अजनबी आदमी से बात करते हुए ठिठका, लेकिन जब मैंने उसकी आँखों में कोई अर्थ छुपा हुआ पाया तो मेरा दिल उससे

बातें करने को उत्सुक हो गया।

मैंने उसे बताया कि मैं डाक-पत्थर काम की तलाश में जा रहा हूँ। सुना है वहाँ मजदूरों की भरती हो रही है, लेकिन मैं इन रास्तों से बिलकुल अनजान हूँ।

वह आंखें फाड़े जाने कितनी देर मेरी ओर देखता रहा। उसकी आँखें फलकर भयावनी सी हो गयीं और वह मूर्तिवत् खड़ा कुछ सोचता रहा। फिर उसने मेरे कंधों पर हाथ रखते हुए कहा—तनिक आराम करलें, फिर आगे चलेंगे। मैं भी डाक-पत्थर ही जा रहा हूं; खूब साथ रहा।

फिर वह एक रूखी-सी हँसी हंसा। मुझे उसकी इस हंसी के पीछे, कोई गहरी व्यथा छुपी हुई मालूम पड़ी। हम सड़क से थोड़ी दूरी पर घने वृक्ष की छाया के नीचे, आराम करने बैठ गये।

टेढ़ी-मेढ़ी तारकोल की सड़क पर कभी कोई मोटर धूल उड़ाती गुजर जाती थी, या इक्के-दुक्के पहाड़ी पीठ पर बोझ लादे शहर ले जाते हुए नजर पड़ जाते थे। पंछी वृक्षों की खोहों में घुसे धूप के ढलने की बाट जोह रहे थे।

उसने बैठते ही मुझसे कहा—इधर के पहाड़ी लोग बहुत गरीब होते हैं, लेकिन इनका दिल दरिया की तरह होता है। मैं भी गढ़वाल का एक पहाड़ी हूँ। उसके बात करने का ढंग दोस्ताना था।

मैंने उससे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

उसने कहा—मेरा नाम धर्मसिंह गढ़वाली है। मेरा बापू एक फौजी था, लेकिन अब वह डाक पत्थर में लोहार की भट्ठी पर काम करता है। मैं उसी के पास जा रहा हूं। तुम्हें मैं डाक-पत्थर ले चलूंगा। वहाँ पर पहाड़ और नदियाँ हैं, और मेरे कई पुराने जिगरी दोस्त हैं।

फिर उसने रूकते हुए मेरी ओर एक खास अन्दाज में देखा और मेरे सुबक-से शरीर को टटोलते हुए बोला—क्या तुम मजदूरी करोगे? डाक पत्थर में सरकार एक बाँध बना रही है।

मैंने उसकी बात को बीच ही में टोक दिया, और कहा--तो क्या वहाँ पहाड़ भी हैं और नदियाँ भी ?

—'हाँ-हाँ ! पहाड़ भी और नदियां भी । मैं पहले डाक-पत्थर ही में काम करता था । वहां बेलदारों में भरती हो गया था, लेकिन बड़े साहब से झगड़ा हो जाने पर मुझे वहां से निकाल दिया गया । सुना है, वह साहब तबदील होकर भाखड़ा चला गया है ।

—'डाक-पत्थर में मेरे बहुत से दोस्त थे । उनमें एक था मास्टर भटनागर, जो पहले मुरादाबाद के किसी स्कूल में बच्चों को पढ़ाने का काम किया करता था; किन्तु छंटनी में बेकार होकर वह डाक ,पत्थर आया और बेलदारों में भरती हो गया । उन्हीं में था बंगाली बाबू, जो हरेक बात पर मजदूरों का पक्ष लेता था । उसका बाप कलकत्ते के मजदूरों की एक हड़ताल में मारा गया था ।

'उनमें गोर्खे थे, गढ़वाली थे, और पंजाबी शरणार्थी भी थे ।'

कुछ देर रुककर उसने कहा—तुम शहर में क्या काम करते थे ?

—मैं एक बेकरी में नौकर था । एक घिनौनी और दोजख सी बदबू मारती कोठरी में मुझे बराबर सोलह-सोलह घंटे काम करना पड़ता था । पाकिस्तान बनने से पहले मेरा घर लायलपुर की बार में था । यहाँ मेरे खेत थे । वहीं मेरा बचपन गीत गाते हुए बीता । वहाँ के सुनहले गेहूं की बालियां दुनिया-भर में मशहूर हैं, लेकिन अब मेरा कोई घर नहीं, कहीं नहीं ।'

मैंने देखा, धर्मसिंह गढ़वाली की पलकें झुक गयीं और वह किसी गहरी सोच में खो गया । मैं उसके चेहरे पर अंकित भावों को गौर से भांपने लगा । वृक्षों की छाया ढलकर हम से थोड़ी सी दूरी पर चली गयी थी और घने वृक्षों के झुण्ड में से निकलकर कुछ पहाड़ी लड़कियां वृक्षों के सूखे पत्ते बटोरने लगी थीं । थोड़े ही फासले पर दो पहाड़ी एक सूखे

वृक्ष को काट रहे थे और साथ ही उन लड़कियों की ओर कनखियों से झाँकते हुए गाये जा रहे थे—

नथुली तोला की
थोड़ा घिच्ची पेने दो
नथुली तोला की......

गढ़वाली मूर्ति बना बैठा था। और कभी कभी कनखियों से मेरी ओर झांक लेता था। काफी देर बाद खामोशी को भंग करते हुए उसने कहा—अब हमें चलना चाहिए, आगे किसी बस्ती में रुकेंगे। फिर उसने अपना छोटा मोटा सामान समेट लिया और हम चल पड़े।

सड़क सुनसान थी। कभी कोई मोटर हमारे चेहरों पर धूल उड़ाती गुजर जाती थी। वह बड़ी तेजी से चल रहा था। कभी जब मैं उससे पीछे रह जाता तो वह मुझे साथ लेने के लिए रुक जाता और कहता :

—मालूम पड़ता है, कभी पैदल नहीं चले हो, पूरे शाहजादे लगते हो। हमने अपने सब पहाड़ पैदल ही घूम छोड़े हैं।

मोटर ट्रकों की गूंज हमारे कानों में पड़ी। हम सड़क पर से पटरी पर हो गये। उसने अपनी गठरी मेरे हाथों में थमाते हुए कहा—ये ट्रक शहर से आये हैं और डाक- पत्थर जा रहे हैं। मैं इन्हीं ट्रकों पर कई बार डाक पत्थर आता जाता रहा हूं।

फिर उसने सड़क के किनारे पर खड़े होकर हाथ हिलाना शुरू किया। ट्रक हमारे पास आ गये थे। मेरे थके-मांदे शरीर में फिर से रक्त का संचार होने लगा था और मेरा मस्तिष्क कल्पना करने लगा, अब हम जल्दी ही डाक-पत्थर पहुंच जायेंगे। अब हमें सड़क पर टांगें नहीं घिसटना पड़ेंगी।

गढ़वाली बराबर हाथ हिलाता रहा, लेकिन ट्रकों की रफतार में कोई अंतर नहीं आया। वह हमें पीछे छोड़कर आगे निकल गये थे।

उसने मेरे कंधों पर हाथ रखते हुए कहा—इन हरामियों को हमारा जरा-भर लिहाज नहीं है। सब नयी-भरती है। पुराने ड्राइवर मुझे खूब पहचानते थे। खैर, कोई हर्ज नहीं, आबाद रहें हमारी टांगें, सन्ध्या होते ही हम डाक-पत्थर पहुंच जायेंगे।

कुछ फर्लांग आगे एक छोटी-सी बस्ती मिली। सड़क के दोनों ओर दुकानों की लम्बी कतारें थीं और पश्चिम की ओर खपरैल की झोंपड़ियों का एक झुन्ड सा दिखाई दे रहा था। गढ़वाली ने कहा—यहाँ कुछ पेट-पूजा करके आगे चलेंगे। तुम्हें जरूर भूख लग रही होगी।

वह मुझे सड़क से कुछ फासले पर ले गया। हम एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। उसने अपनी गठरी खोलकर जमीन पर फैला दी, उसमें रोटी के कुछ सूखे टुकड़े थे।

फिर उसने मुझे बहुत-सी बातों के लिए सतर्क करते हुए कहा—जीने के लिए चट्टान जैसा जिगरा चाहिए। मैंने जिन्दगी के बड़े लम्बे रास्ते तय किये हैं। और मैंने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। यह कहता हुआ वह ठहाका लगाकर हंस पड़ा। मेरे फीके चेहरे पर एक बार मुस्कान की लहर दौड़ गयी। 'हँसो, जी भर हँसो।' वह जोशीले स्वर में कहता गया।

मैंने फिर अपनी बात दुहराई—क्या अब भी डाक-पत्थर दूर है?

उसने मेरी ओर एक पैनी दृष्टि डालते हुए कहा—नहीं, डाक-पत्थर अब दूर नहीं है। अंधेरा फैलने से पहले ही हम वहाँ पहुँच जायेंगे।

सूर्य आँखों से ओझल हो गया था और आकाश पर लालिमा छायी हुयी थी। अब हम चकरोता रोड को छोड़कर दूसरी सड़क पर हो गये थे।

ट्रकों का शब्द फिर सुनाई दिया। गढ़वाली ने कहा—अब ट्रक डाक-पत्थर से आ रहे हैं।

जब ट्रक हमारे समीप आये तो हमने देखा कि उन पर भारी-भरकम मशीनें लदी हुई हैं। गढ़वाली तेजी से रास्ता रोककर खड़ा हो गया। जब पहला ट्रक उसके पास आकर रुका तो उसने ड्राइवर से बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा—क्या सचमुच ?

ड्राइवर गोरखा था। पहले तो उसके तेवर चढ़े, किन्तु हमारी दयनीय दशा का ख्याल कर उसने सहानुभूति भरे स्वर में जवाब दिया—हां, सचमुच......

धर्मसिंह का चेहरा मारे गुस्से के एकदम लाल हो गया। उसने मेरे लम्बी मंजिल के थके और धूल भरे पांवों की ओर देखा। उसकी उन निगाहों में एक ही साथ कितनी करुणा और कितना क्रोध भरा हुआ था।

ड्राइवर ने ट्रक स्टार्ट किया। मशीनों के बोझ से कराहता हुआ ट्रकों का काफ़ला हमारे पास से धीरे-धीरे रेंगता हुआ आगे बढ़ा और कस्बे की दिशा में ओझल हो गया।

मेरा साथी अब भी अपनी जगह पर स्थिर खड़ा था। पश्चिम की लाली बुझ रही थी, लेकिन धर्मसिंह को जैसे कहीं जाने की कोई भी जल्दी नहीं थी। मौसमों की मार और जीवन संघर्षों की छापवाले अपने चेहरे पर क्रोध की लाली लिये वह उधर देख रहा था, जिधर ट्रक ओझल हुए थे।

मैंने कहा—चलना चाहिए। डाक-पत्थर अभी न जाने कितनी दूर है; और पश्चिम में अन्धेरा घना हुआ चाहता है।

मेरी बात सुनकर वह जैसे नींद से जागा और कड़वे-तीखे गले से बोला—डाक-पत्थर ? हाँ, डाक-पत्थर अब काफी दूर हो गया है। वैसे डाक-पत्थर नाम की बस्ती तो करीब ही है, लेकिन तुम्हारा हमारा डाक-पत्थर हमसे कोसों दूर चला गया है।

मैं उसकी बात का मतलब समझ न सका। फिर भी उसके बोलने के ढंग और आवाज़ के तीखेपन ने मेरे दिल में बेचैनी और भय पैदा

कर दिया। मैंने सहमकर पूछा—क्या मतलब है तुम्हारा ?

उसने झटके से अपना हाथ हिलाकर कहा—देखा नहीं उन मशीनों से लदी ट्रकों को ! वह गोरखा ड्राइवर कह रहा था, डाक-पत्थर स्कीम बन्द कर दी गयी है। मशीनें वहां से उखाड़कर दूसरी जगह ले जायी जा रही हैं। भरती बन्द हो गयी है; काम पर लगे बेलदार और कारीगर बेकार हुए जा रहे हैं। हम वहाँ जाकर......

मुझे लगा, मानो किसी ने मेरी आंतें काट दी हैं और मेरी जांघों और टांगों के बीच से बुटनियां निकाल फेंकी हैं। जिस आशा की डोर को थामे मैं तारकोल की तपती सड़कों को नापता आया था, वह डोर ही कट गयी थी। ऐसा लग रहा था कि मैं अब गिरा, अब गिरा...

धर्मसिंह ने गहरी हमदर्दी के साथ अपना दाहिना हाथ मेरे कंधे पर रखा और बोला—कोई बात नहीं दोस्त, इस व्यवस्था से स्कीमों का फेल होना और मशीनों का उखड़ना आम बात है। हम जवान पट्ठों के लिए सड़कों की धूल और काम की तलाश में मारे-मारे फिरना ही जिन्दगी की सबसे बड़ी आजमाईश है। हमारा दिल चट्टान की तरह होना चाहिए, चट्टानों की तरह; ताकि अंगारों की तरह तपती हुई सड़क नापकर जब हम रोजी के करीब पहुंचें और स्कीम फैल हो जाय तो दिल मिट्टी की तरह लुपलुप न हो, बल्कि चट्टान की तरह मजबूत बना रहे, और हम साबित कदम बढ़ते चले जायें, आपदाओं को ललकारते हुए...

वह छन भर को रुका, उसकी बात में गजब की ताकत और दिलासा था। मेरी आँखों में छायी जाती धुन्ध के जाले कट गये और मैंने सुना, धर्मसिंह कह रहा था—हम हजार-हजार लाख-लाख. करोड़-करोड़ इसी तरह साबित कदम चलते रहेंगे और ठोकरों से इस व्यवस्था को बेकार कर देंगे और सब के लिए सकून और चैन, आराम और काम मुहय्या कर देंगे। लेकिन इस सबके लिए जरूरी शर्त यह है कि अपने दिल को

मजबूत रखें; क्योंकि एक वही तो पूंजी हमारे पास है । उसी के जोर से हम इस सारी मशीनरी को उखाड़ फेंकेंगे और बकवास करने वालों की हर स्कीम को फेल कर देंगे, समझे मेरे दोस्त...

अंधेरा घिर आया था । लेकिन अब मुझे इत्मिनान था कि दिन उगेगा और उजाला होगा और एक दिन हम डाक-पत्थर पहुंच कर रहेंगे ।

तभी धर्मसिंह ने खुली आवाज में अपना गढ़वाली गीत शुरू किया :

बाँह् जग बाँरीजा
कब घर आलो
काँठा कुसुरजा......

बगूले

उन दिनों की बात है जबकि मैं काम की तालाश में भटकता फरीदाबाद की ओर आ निकला था। और जहाँ आते ही मुझे रीठू गढ़वाली एक दोस्त के रूप में मिला था। वह इस टाऊन में पहले काम कर चुका था।

पच्छमी पंजाब में हमारी जिमीदारी थी। और मुर्गे लड़ाने के सिवाय आज तक मैंने कोई काम नहीं किया था। मेरे मुर्गों का द्वंद-युद्ध देखने लायलपुर की बार में दूर-दूर से शौकीन आते थे। देश बंट गया। भरा पूरा परिवार खतम हो गया। मैं खाली हाथ इधर नये पैदा हुए हिन्दुस्तान में आ गया था।

मैं क्वार्टरों के बरामदे में बैठा रीठू की बाट जोह रहा था कि सामने ठेकेदार के क्वार्टर से उठकर दो युवक मेरे पास आ बैठे। मैंने उन्हें देखा, नये लोग थे। आज ही आये थे। और रंग साजी का काम करते थे।

उनमें से एक बोला :

—जहाँ कितनी देर से हो। काम खूब होगा। क्या काम करते हो ?—

प्रश्न करने वाला सिक्ख युवक था। उसके सिर की पगड़ी में मैल की एक मोटी तैय जम गयी थी। लेकिन उसके जिस्म की सडौलता और बड़ी-बड़ी आँखें बरबस अपनी ओर खींचती थीं। दूसरा युवक शक्ल

सूरत और पहरावे से चिड़ीमार लगता था। उसकी चंचल आँखें कुछ ढूँढनी सी लगती थीं।

मैंने कहा :

—मुझे अभी दो दिन हुए हैं, जहाँ पर आये। अभी तक काम का बन्दोबस्त नहीं हुआ है।

सिक्ख युवक का नाम गुरचरनसिंह था। वह अपने सम्बन्ध में खुद ही बताने लग गया था कि वह सीमा प्रांत से आया एक शरणार्थी है। और अपने धनी व्यापारी मां बाप को छोड़ कर भाग आया है। दूसरा युवक बैनर्जी दिल्ली में अपने चाचा के साथ राशन के डिपो में काम करता था। जब उसका चाचा ब्लेक मारकीट करता पकड़ा गया, तो वह दिल्ली से भाग आया था।

जब एकाएक गुरचरनसिंह और बैनर्जी ठेकेदार का बुलावा आने पर मेरे पास से उठकर चल दिये, तो मैं इसी सोच में डूबता-उतराता रहा कि जाने क्यों युवक घर से भाग आते हैं। इस बात का जवाब ढूँढना मेरे लिए इतना सहज नहीं था, इस लिए यह प्रश्न मेरे दिमाग में ही कुल-बुलाता रह गया।

रीठू प्रसन्न-मुद्रा में लौट आया और आते ही बोला :

—तुम्हारे और अपने लिए, काम ठीक कर आया हूं। मैं सीधा सेन के क्वार्टर में चला गया था। वे लोग अभी चाय पीने बैठे थे। सेन की बीवी मुझे पहचानती हुई धीरे से अपने पति के कान में कुछ फुस्फुसाई। बस फिर क्या था, सेन ने मुझे अपने बराबर बैठा लिया। मैंने बड़े ठाठ से वहां जम कर चाय पी। सोचा, ऐसा मौका रोज-रोज थोड़े आयेगा?

फिर वह कुछ रुक कर बोला :

—इन अफसरों से हमारा कोई मेल नहीं बैठता। और न ही ये किसी के यार होते हैं। लेकिन मैंने उन पर एक बहुत भारी अहसान

किया था। —मुझे उस अहसान के बारे में जानने को उत्सुक देखकर वह बोला :

—जहाँ का बड़ा इन्जीनियर एक पठान था। अवध के किसी पुराने घराने से वह अपनी पीढी का नाता जोड़ता था। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी औरत थी। और सेन की नाजुक बदन बीवी पर उसकी बहुत देर से निगाह टिकी हुई थी। कम्बख्त लगती भी ऐसे है, जैसे पानी का बुलबुला हो। एक दिन सेन की गैर-हाजिरी में वह उसे घुमाने खेतों की ओर दूर तक ले गया। अभी सन्ध्या का झुटपुटा सा था। मैं गाँव से लौटते वक्त जरा घूमने के ख्याल से उसी रास्ते पर हो लिया था। अचनचेत मेरे कानों में किसी औरत की चीख सुनाई पड़ी। मैं भागकर झाड़ियों के एक झुण्ड की ओर हुआ, तो क्या देखता हूँ कि पठान इन्जीनियर किसी औरत को दबोचने ही वाला है। मैंने आव देखा न ताव, पठान पर पिल्ल पड़ा। और औरत को उसके चंगुल से छुड़ा लिया। औरत जो घायल हिरनी की तरह सहमी हुई थी, मेरी ओर कृतज्ञता से देखती रह गयी। परास्त हुआ पठान मुझे हिंस्र-पशु की भाँति घूरता रहा, किन्तु मैंने उसकी परवाह नहीं की। और औरत को, जिसे मैं पहचान गया था, क्वार्टर में पहुँचा दिया।.........

दूसरे दिन पठान मुझे बहुत ढूंढ़ता रहा। लेकिन मैं रात को ही फरीदाबाद छोड़कर भाग गया। बाद में सेन के शिकायत करने पर पठान की किसी दूसरी जगह बदली कर दी गयी। बस, यही किस्सा है, दोस्त! —

फिर वह बोला :

—हाँ, तैयार हो जाओ। मैं तुझे वर्कशाप में पहुँचाकर अपने काम पर चला जाऊंगा। वर्कशाप का मिस्त्री अपना ही आदमी है। वह तुम्हारा ख्याल रखेगा। साहब ने मेरी ड्यूटी ऐंग्लो-इन्डियन सुपरवा-

ईजर के साथ लगायी है। वह कोई नया आदमी है। पुराने सुपरवाईजर खन्ना से मेरी पक्की सांठ-गाँठ थी, खैर ! —

रीठू ने मुझे जेब से कागज का एक पुर्जा निकाल कर दिखाया, जिस पर दोनों के लिए काम पर लेने की आज्ञा लिखी हुई थी। एक प्रश्न जो मेरे दिमाग में चक्कर काट रहा था।—मैंने उससे दरियाफत कर ही लिया :—हमें मजूरी क्या मिलेगी ?

—दो रुपये अपने लिए और ढाई रुपये तुम्हारे लिए साहब से तैह कर आया हूं। साहब ने मुझ से वादा किया है कि वह तुम्हें जल्दी ही दफ्तर में काम दे देगा।

रीठू ने मुझे वर्कशाप के मिस्त्री लेखराम के सपुर्द करते हुए कहा :

—इस का ख्याल रखना समझे ?

लेखराम ने उसे आगे बोलने का मौका ही नहीं दिया। और मेरा कन्धा थपथपाते हुए वर्कशाप के अन्दर ले गया। वर्कशाप टीन के एक बड़े शेड में था। उसमें कुछ छोटी-छोटी मशीने पड़ी थीं, उनके बारे में अपने अल्प-ज्ञान के होते हुए भी मैं यह बात मैं भली प्रकार समझ सकता था कि मशीने किस काम आने वाली हैं। वर्कशाप में उन्हें जोड़ने और मरम्मत करने का काम होता था। बाकी मजदूर जब इधर-उधर काम में जुट गये, तो मैं खड़े का खड़ा उन्हें निहारने लगा। वे भी मेरे सम्बन्ध में मन ही मन अनुमान लगा रहे होंगे। पहले तो मैं उनकी गति-विधियों को भाँपता हुआ किसी तरह खड़ा रहा, किन्तु कुछ देर में मैं उकता गया। मुझे आत्म-ग्लानी सी होने लगी। मैं मिस्त्री से बोला :

—जहाँ कोई काम भी मिलेगा, या ऐसे ही खड़ा रह कर समय काट देना पड़ेगा ?

लेखराम टेढ़ा सा मुस्करा दिया। वह बोला :

—पच्छमी पंजाब में क्या काम करते थे ?

—मुर्गे लड़ाता था...।

फिर वह मेरे नाजुक नर्म हाथों की ओर देखता रह गया। पहरावे से मैं पहले ही सब से प्रथक दीखता था। किन्तु इतने लोगों के सामने हाथ पर हाथ धरे बेकार खड़े रहना मुझे असह्य हो रहा था। मैं बेचैनी से वर्कशाप के बाहर आकर चक्कर काटने लगा। ऐसे घूमने से मेरा चित्त कुछ हल्का हुआ। वर्कशाप के साथ ही बाहर धौंकनी पर कोई गढ़वाली बूढ़ा लोहे के छोटे-छोटे औजार बना रहा था। मैं उसी के पास बैठ गया। और उससे बातें करने लगा। उसने मुझ से कई प्रश्न पूछे। मुझे उन प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर देना ही पड़ा। वह बोला :—वर्कशाप का काम तुम्हारे बूते का नहीं। तुम यहीं बैठकर धौंकनी में हवा लगाया करो। मैं मिस्त्री से कह दूंगा।

मैंने संतोष की सांस ली। और उस दिन सन्ध्या तक वहीं बैठा धौंकनी में हवा लगाता रहा।

छुट्टी के समय जब मैं क्वार्टर में लौटा, तो रीठू बेहद खुश दीख रहा था। उसने मुझसे कई सवाल पूछे कि वर्कशाप में क्या काम करना पड़ा। कोई मुश्किल तो पेश नहीं आयी। मैं अनमना सा उत्तर देता रहा। मेरा मन अजीब दुविधा में था। मेरे संस्कारों पर जिन बातों की अमिट छाप पड़ी थी, वे मुझे किसी दूसरी दिशा की ओर उन्मुख करती थीं। इससे पहले मैं शरणार्थी कैम्प में पड़ा रहा था।.........

.........बरामदे में दो चटाईयाँ बिछाकर हम सोने की तैयारी करने लगे। पर आँखों में अभी नींद कहाँ ?

किसी गढ़वाली गीत की कड़ी गुनगुनाते हुए रीठू काँसे की थाली पर ताल देने लगा। कुछ झेंप तथा संकोच होने के कारण मैं गुमसुम भीतर ही भीतर उसके गाने का आनन्द ले रहा था। उसका स्वर ऊंचा ही उठता गया। और वह इतना मस्ती में आ गया कि आस-पास के लोगों का भी उसे कुछ ख्याल नहीं रहा। यद्यपि मुझे गढ़वाली बोली

का नाममात्र भी ज्ञान नहीं था, फिर भी मैंने गीत की आत्मा को पकड़ने में अपने को सामर्थ पाया। एक गढ़वाली प्रेमी के अपनी प्रेमिका के प्रति हृदयोगार मेरे मस्तक में अपना स्पष्ट आकार बनाते हुए प्रतीत देने लगे : प्रेमिका अपने प्रेमी को सम्बोधन करती है कि अब तो आँगन में सूर्यमुखी ने भी अपनी पँखुड़ियाँ खोल ली हैं, किन्तु प्यारे ! तेरा इस आँगन में कब आना होगा। तू परदेस से कमाई करके कब घर लौट आयेगा...ऐ कड़ा परिश्रम करके अपने परिवार का पालन-पोषण करने वाली गृहणी ! एक मन गेहूँ तू पीस चुकी, अब जरा पल भर के लिए हंस ले ताकि तेरे कड़े श्रम की थकान जाती रहे।... ऐ तोला की नथ वाली युवती ! मुझे एक चुम्बन देती जा ताकि मैं अपने विषाद भरे जीवन के कड़वे घूँट अन्दर ही अन्दर निगल लूँ। और ताजा दम होकर फिर अपने काम में जुट जाऊँ।

गढ़वाली गीत ने मुझे रोमांचित कर दिया। और मैं आनन्द विभोर हुआ बादलों में तैर रहे चाँद के टुकड़े को जिज्ञासा से निहारने लगा। जैसे नदी की अलबेली लहर की चाल में कोई मछुआ अपना जाल फेंक कर बाधा खड़ी कर दे—ऐसे ही जाट ठेकेदार के कर्कश स्वर ने अचानक भावनाओं का झूला झूलते हुए हमें जमीन पर ला पटका। वह ऊँचे स्वर में चिल्ला रहा था। उसने अपने मुन्शी को हमें खामोश कराने के लिए भेजा। लेकिन रीठू की एक ही घुड़की ने उसे भगा दिया। अब ठेकेदार खुद आया, तो मैं किंचित घबरा सा गया, किन्तु रीठू ने मेरे कन्धे थपथपाते हुए कहा :

—घबरा नहीं। यह रोहतक का जाट ठेकेदार बड़ा धूर्त है। हम इससे बड़ी-बड़ी टक्करें ले चुके हैं।

ठेकेदार को अपने जोश पर जैसे एकाएक पछतावा हो उठा हो। वह उलटे पाँव अपने क्वार्टर को लौट आया।

वह कुछ बड़बड़ाता भी जा रहा था :

—यह खुराफात की जड़ फिर जहाँ ! इसे तो हमने एक बार उखाड़ फेंका था। हुँ !

रीठू के रौबीले व्यक्तित्व पर मैं और भी मुग्ध हो उठा। क्षण भर ही में मेरी घबराहट जाती रही।

रीठू ने फिर काँसे की थाली पर धौल जमाई। और इस बार वह किसी करुण गीत की लय में बह गया। लेकिन जल्दी ही जब एकाएक गढ़वाली के करुण स्वर थक कर सो गये। तो मैं अर्द्ध-निन्द्रा में करवटें बदलने लगा।

दूसरे दिन मेरा शरीर बुरी तरह टूट रहा था। लेकिन बिना रोक टोक मैंने आधा दिन गढ़वाली की धौंकनी पर बैठे बिता दिया। दिन में जब छोटा साहब सेन 'रौण्ड' पर आया, तो मैं एक दम तन कर खड़ा हो गया। मिस्त्री लेखराम ने शायद मेरे सम्बन्ध में संकेत से साहब को कुछ कहा। वह साहबों सी 'अच्छा' कह कर आगे निकल गया। मैं मौका देखकर सीधा अपने क्वार्टर में आकर सो गया। नींद लेने से शरीर कुछ हल्का हुआ। छुट्टी के पश्चात क्वार्टर में आने पर रीठू ने मुझे प्रसन्न-मुद्रा में पाया।

एक शाम को जब हम अभी काम से लौटे ही थे। और खाना बनाने की तैयारी कर रहे थे, तो सुपरवाईजर क्वार्टरों में घूमता हुआ दिखाई दिया। वह अपनी खिचड़ी भाषा में कोई आदेश दे रहा था कि चलो, सभी उठो ! आज रात भर काम करना होगा। दो दिन में विकास ब्लाक का उदघाटन करने मंत्री जी...आने वाले हैं।......

उस रात सब को काम पर जाना पड़ा। और हम रात भर उदघाटन के लिए मंडप तैयार करते रहे।

दूसरे दिन सुबह जब हमें दो घंटे की छुट्टी हुई तो मैंने अपने पेट में कुछ दर्द सा महसूस किया। पहले तो मैंने इस मामूली दर्द का किसी के

आगे जिक्र करना भी उचित नहीं समझा। लेकिन दर्द की टीस जब बढ़ने लगी, तो मैंने रीठू से कह दिया। और फिर जब दर्द बढ़ता ही चला गया, तो रीठू को हाथ-पाँव की पड़ गयी।

दूसरे क्षण जब मैं दर्द से छटपटा रहा था, तो धुँधली सी आकृतियाँ मेरे गिर्द घेरा डाले एक दूसरे को कनखियों से इशारे कर रही थीं।

और रीठू की अस्पष्ट सी आवाज बगूले की भाँति सनसनाती मेरे कानों से टकरा कर निकल गयी :

—मर्द का बच्चा है—पीड़ा झेल जायेगा।—जाने इस आवाज का मुझ पर क्या जादू सा असर हुआ! मैंने आंखें खोलीं तो रीठ मेरे सिरहाने खड़ा मुस्करा रहा था। और मैं सोचता ही रह गया कि आदमी पीड़ा के होते हुए भी कभी पीड़ा क्यों महसूस नहीं करता!

...और मेरे भीतर उठा यह बगूला गत जीवन की सारी व्यथा, सारी पीड़ा को तिनके की भाँति उड़ा ले गया।...

युद्ध और बचपन

दूसरे महायुद्ध के दिन थे। बादलों के स्थिर सुरमई रंग के टुकड़ों से लगता था कि वे बरस बरस कर थक गये हैं, और विश्राम कर रहे हैं। हवा थम गयी थी। गाय और मेरा बछड़ा बेचैनी से नाँद में सिर मार रहे थे। मां ने आंगन में बिछौना कर दिया। तभी हमारी गली के दूसरे छोर पर से मिलखी चौकीदार की आवाज सुनाई पड़ी :

—हुकुम बादशाह दा। खलकत खुदा दी। सुनो बई ओ। कल हरीसिंह नम्बरदार की हवेली में भरती खुलेगी। जो भरत्ती होना चाहें, अपना नाम लिखा दें।'

माँ दूसरे कोठे से गाय के लिए चारा लेने गयी थी। सुन कर हड़-बड़ाई सी बाहर आ गयी।—'फौज वाले हैं नाशुक्रे! जयखाने। इन्हें मौत आये जो दूसरों का जीना हराम करते हैं।'—माँ ने मुँह में तीखी नफरत कर कर कहा।

—'ये गाँव में भरत्ती करेंगे माँ?'—

—'हाँ बेटा!'—

—'गाँव वाले भरत्ती होंगे?'

—'किसी मर्द के जाये हों तो इन्हें मूंह न लगायें।'—

—'फिर यह जबरदस्ती करेंगे।—

—'जेल में ठोंस देंगे-और क्या कर सकते हैं। जबरदस्ती बंदूक तो हाथ में थमा नहीं सकते।'—

—'माँ, जब इन्होंने सारे गांव का चैन छीन लिया है, तो लोग इन्हें मुँह ही क्यों लगाते हैं ।'

मेरे प्रश्न ने मां को गम्भीर बना दिया। थोड़ी देर पश्चात वह बोली :

—'मुँह लगाने वालों ने लड़ाई का मजा चख लिया न फिर ! पेट को झुलका ही देना था, तो मेहनत मजूरी कर लेते । अपने जायों पर ही तरस खाते । जवानी और अरमानों को धूल में तो न रुलाते !'

डोंडी वाला अगली गली में बोल रहा था । उसकी आवाज हमारे आँगन में ऐसे गूंज रही थी, जैसे किसी के मरने पर मरघट का कुत्ता रो रहा हो । जैसे ही उसकी आवाज गाँव के दूसरे छोर में जाकर डूब गयी, हमारी उत्तेजिना कुछ कम हुई।

मां घर के छोटे मोटे काम से निपट कर मेरे सिरहाने आ बैठी । वह अपनी उंगलियों से मेरे बालों को धीरे-धीरे सहला रही थी । जब मैं सोने के लिए खाट पर लेटता था, तो वह अकसर ऐसा किया करती थी । और फिर वह कोई बात छेड़ देती थी । कभी मेरे भविष्य की, कभी अपने मायके की। और कभी युद्ध की—जिसकी परछाईं से माँ मुझे बचा कर रखना चाहती थी।

तीज का त्योहार क्या आया कि इस बार किसी के मुँह से नहीं फूटा:—'स्वागत सावन के मन भावन,पावस शुभ तेरी फेरी ।'—बाबा बोहड़ (बरगद) पर पेंग नहीं चढ़ी । मेरी बहन तीज मनाने ससुराल से आयी थी । भय विस्फारित आँखों से गांव का नया रंग-ढंग देखकर वह स्तब्ध खड़ी थी । जितने दिन रही, बरमा के मोर्चे पर मारे गये अपने ससुराल के आदमियों की बातें करती रही । उनके भरे-पूरे घरों की बात कहती रही । मुझे बताती रही कि मरने वाले अपने पीछे कितने बड़े परिवार छोड़ कर गये हैं । दुध-मुँहें गोदी के बच्चे छोड़ कर लाग के गाल में चले गये हैं । जवान औरतें अपने पतियों के वियोग में रो रो कर

आँखें खो बैठी है । चारों ओर हाहाकार है । मौत जैसे जीवन पर अट्टहास कर उठी है । मंद-मंद बहने वाली पावस की समीर में विष घुल गया है । खेतों की सोंधी मिट्टी में जहर के कण मिल गये हैं । आदमी मौत के कगार पर खड़ा है बादल गरजते हैं, पर उनकी गर्जन में रोदन सी हाहाकार है । क्रंदन सा चीत्कार है ।

मेरे हृदय के भीतर से उठने वाले विक्षोभ का पारावार नहीं था । मैं अपने को ऐसे महसूस कर रहा था कि जैसे समुद्र के किसी द्वीप में घिरा खड़ा होऊं । और मेरे चारों ओर विकराल समुद्र गर्ज रहा हो । आज मेरी बाल सखा प्रीतो होती तो नाव की पतवार सम्भाले आती, और मुझे इस भंवर से निकाल कर बाहर किनारे पर ले आती ।

हमारे आँगन के जामुन पक कर झड़ भी गये । मैंने प्रीतो के लिए ताजे ताजे जामुन तोड़ कर रखे थे । पर माँ मेरी मूर्खता पर हंस दी थी । उसने कहा था—"पगले बेटे ! जामुन तो दूसरे रोज गल जायेंगे । वह जाने कब आये । तू उसका ख्याल छोड़ दे । तुम दोनों अब जवान हो गए हो । प्रीतो की नानी कह रही थी कि इसी कार्तिक के महीने प्रीतो का व्याह वे कर देंगे । लड़का सेना में है । आठ जमात तक पढ़ा हुआ ।"

मैं चौंक उठा । माँ ने पहले नहीं बताया । प्रीतो के व्याह की बात उसने मुझसे छुपा कर क्यों रखी ? प्रीतो एक सैनिक के साथ व्याह होकर चली जायेगी । सैनिक जो युद्ध के मोर्चे पर लड़ रहा है । वह कुछ दिन के लिए छुट्टी आयेगा, और प्रीतो को व्याह कर फिर जलदी मुकलावा (गौना) के लिए युद्ध के मोर्चे से लौट आने का वादा करके चला जायेगा ।

माँ भी मेरा दिल तोड़ने लगी । मैं विक्षोभ से भर उठा । जितनी बार मैंने प्रीतो के लिए जामुन जुटा कर रखे कि माँ ने उन्हें उठाकर सिर्का डाल दिया था ।

अब जब कि और कोई चारा नहीं दीखता था तो मैं अपनी गाय के बछड़े के साथ खेलकर दिन निकाल लेता था। उसको दौड़ाता हुआ ऊंचे पीर की मढ़ी तक ले जाता। और पोखर के किनारे घास में छोड़ देता। जब वह फुदकता तो घुंघरूओं की भनन भनन से मेरे हृदय के तार भी बज उठते। प्रीतो स्मरण हो आती। जवानी के फूटते नये अंकुर आँखों से भरती ओस से भीग जाते।

एक दिन माँ ने कहा :

"बेटा ! इस बार तो माल पूड़े (पूए) भी नहीं बने। कब तक जहान का गम लेकर बैठे रहेंगे ? जा भाग, पीपल के चौड़े-चौड़े कुछ पत्ते तोड़ ला। मैं अपने लाल को आज पूड़े खिलाऊंगी।"

"पूड़े मैं नहीं खाऊंगा माँ ! तू सोचती नहीं कि कैसे दिन है, और तुझे पूड़ों की पड़ी है।"

माँ को ठेस लगी। वह मेरी बल्लईयाँ लेने लगी—"तू मेरा लाल जुग जुग जीए। तुझे क्या पड़ी है, दूसरों की !"

"पर माँ सोच तो सही, गाँव में आज कौन पूड़े खा रहा है ? कौन पेंग चढ़ा रहा है। बाबा बोहड़ कैसे उदास खड़ा है। कहाँ हैं वे गभरू (जवान) जिनके दंगल देखने के लिए इर्द-गिर्द के गाँवों का जमघटा रहता था। ऐसे में क्या मैं माल पूड़े निगल पाऊँगा। फिर प्रीतो कहाँ है।"

माँ की मुखाकृति गंभीर हो गयी। वह कुछ नहीं बोली। मैंने ही उसके गल-बहियाँ डालते हुए कहा—"नाराज हो गयी मेरी माँ क्या ? जहान का गम लेकर नहीं बैठेंगी तो कल को तेरे बेटे के सुख दुःख में भी कौन आयेगा, सोच तो सही माँ !"

मेरी बात से मां की आँखें खुली की खुली रह गयीं। उसने मेरी ओर बड़े अरमान से देखा। बोली : "मेरा बेटा इतना समझदार हो गया है, ये मैं नहीं जानती थी ! लाल ! माल पूड़े से क्या ज्यादा पेट

भरता है ! मैं तो तेरी खुशी के लिए सब करती हूं। अगर कोई चीज़ तुझे दुखे—मैं क्यों करने लगी।"

दोनों ने दिलों को कोई ठेस पहुंचे बिना ही समझौते की राह निकल आयी थी। माँ बेटे ने एक दूसरे की भावना को समझ लिया था।

उस दिन मैं बचपन को लेकर ही सोचता रहा। एक घटना प्रीतो से सम्बन्ध रखती है। याद हो आयी। कई बरस पहले की बात है। उस बरस हमारे जामुन के पेड़ को खूब फल लगा था। मैं और प्रीतो जामुन तोड़ते थे, फिर आपस में बाँट लेते थे। जो पेड़ से झड़ कर नीचे गिर जाते, वे अड़ोस-पड़ोस के बच्चे उठा लेते थे। पेड़ के ऊपर चढ़ कर जामुन तोड़ने की इजाज़त मैंने सिर्फ प्रीतो को दे रखी थी।

एक दिन जामुनों के बंटवारे पर हम दोनों एक दूसरे के साथ उलझ पड़े। वह कहती थी कि मैं एक दम रद्दी जामुन उसको दे रहा हूं। और अच्छे-अच्छे खुद रखे जा रहा हूं। बात यहाँ तक बढ़ी कि मैंने उसको झोंटे से पकड़ कर कोठे की छत पर पटक दिया। वह भी बिफर पड़ी। और उसके मेरे पेट में एक ऐसी लात जमाई कि मैं कुलबुलाकर रह गया। मुन्डेर पास में था। हम उलझते हुए उससे जा टकराए। उसने मुझे धक्का दिया। मैं घोड़ी वालों के आंगन में जा गिरा। काफी ऊँची छत पर से गिरा था। नीचे उपलों का ढेर पड़ा था। बच गया। फिर भी मुझे घोड़ी वाले लखासिंह ने बेहोशी की दशा में घर पहुंचाया। माँ घबरा गयी। उसने मुझे गर्म-गर्म दूध का कटोरा पिलाते हुए कहा :

—मेरे बेटे को किसने धक्का दिया। कोई बताये तो सही। परमात्मा करे, उसको मौत आये। कौन था वह नाशुक्रा ! हाय ! मैं मर गयी।

मुझे होश आयी तो माँ ने बहुत पूछा कि कौन था तुझे धक्का देने वाला। पर मैंने जबान नहीं खोली। जानता था कि जब प्रीतो और मैं आपस में उलझ रहे थे, तो आसपास देखने वाला कोई नहीं था। ऊना

ऊना सा अन्धेरा फैल चला था। प्रीतो को इस दोष से मैंने बचा लिया था। नहीं तो, हमारे दोनों घरों के सम्बन्ध सदा के लिए बिगड़ गये होते। मैं उससे कभी मिल नहीं पाता। कई दिन खाट पर पड़े माँ की बद-दुआयों से मैं दुःखी होता रहा, क्योंकि वे सब बद-दुआएँ प्रीतो को जाती थीं।

गांव भर में यही चर्चा रही कि नामी के स्वर्ण को कोई कोठे पर से धक्का देकर गिरा गया। उसका पता नहीं चला। लड़का मर गया होता। नीचे उपलों का ढेर था। बच गया। किसी दुश्मन का काम है।

जितने दिन मैं खाट पकड़े रहा, प्रीतो नहीं आयी। फिर जब मैं लाठी का सहारा लेकर आँगन में थोड़ा-थोड़ा चलने फिरने लगा, तो एक दिन प्रीतो हमारे आंगन में दाखिल होते ही माँ से लिपट कर रोने लग गयी। माँ हैरान थी। कोई बात हो, तो समझ आये। कितनी देर वह सुबक-सुबक कर रोती रही। माँ ने मुझे पूछा : "क्या बात है बेटे! इसे क्या हो गया।"

मैंने कहा : "मैं क्या जानूँ! इसी से पूछ ले।" प्रीतो ने स्वयं ही बता दिया था कि कोठे की छत पर से मुझे धक्का उसी ने दिया था। हम आपस में जामुनों पर उलझ पड़े थे।

सुन कर माँ की आँखें सजल हो गयीं। दो बालकों के प्यार के इस बीभत्स रूप ने भी उसे मुग्ध कर दिया था। उसने प्रीतो को कुछ नहीं कहा। दिलासा दिया। और प्यार से उसके आँसू पोंछ दिए। कितना बड़ा जिगरा था मेरी माँ का! फिर प्रीतो कातर निगाहों से मेरी ओर निहारती अपने घर चली गयी थी।

जब यह घटना घटी थी, तो हम बहुत छोटे थे। फिर न माँ और प्रीतो और न मैंने ही इस घटना का कभी जिक्र छेड़ा था। आज तो अनायास याद हो आयी।

बचपन है कि कभी कभी पानी के बुदबुदों की भाँति आँखों में तैरने लग जाता है। मैंने सोलहवें बरस में पैर रखा है, इसीलिए बचपन की छोटी- छोटी घटनाओं को देखने की दृष्टि भी बदल गयी है। उन घट-नाओं को याद करने में एक अजीब सा कौतूहल है। मीठा-मीठा दर्द और उल्लास की एक हिलोर है। मन की एक तरंग को पकड़ पाने के प्रयास में प्रीतो ही आंखों के सम्मुख आती है।

तब मैं अपनी गाय चराने ऊंचे पीर की मढ़ी पर जाया करता था। प्रीतो यूँ ही मेरे साथ चली जाया करती थी। वह सात आठ बरस की रही होगी। वहीं पीर के पोखर पर हम चीकनी मिट्टी के घर बनाना खेला करते। यह खेल हमें बहुत प्रिय था।

एक बार शरारत क्या सूझी। कीमू अराईं की बकरियाँ चरती हुई पोखर पर निकल आयीं। प्रीतो ने इर्द-गिर्द निगाह दौड़ाते हुए कहा :

—इन बकरियों का सांईं कोई नहीं है। दोह लें। थन चूँघ लें। कोई नहीं देखेगा।

प्रीतो को खूब सूझा था। उसकी बात से मेरा मन भी चंचल हो उठा।

—हां, ठीक है। कीमू अराईं की बकरियाँ हैं। वह कहीं ढाक में बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा होगा। पर ठहर जरा, मैं मढ़ी पर चढ़ कर चारों ओर एक बार अच्छी तरह देख लूं। वह कहीं पास ही झाड़ी की छांह में बैठा न हो।

पीर की मढ़ी काफी ऊंची थी। घनी झाड़ियों से ढकी ढाक को मैं दूर तक देख सकता था। कीमू कहीं दिखाई नहीं दिया।

मैंने प्रीतो से पूछा :

—तुझे दोहना आता है?

—नहीं। पर जानती हूं कि थन को अंगूठे से खूब दबाते हैं, तो दूध की धार फूट पड़ती है।

दूध-भरे थन (स्तन) वाली एक बकरी को मैंने घेरा । वह शायद ताजा ही सूई थी । मैंने उसे पकड़ा, प्रीतो अंगूठे से स्तनों को दबाने लगी । दूध नहीं निकला । और बकरी भी मेरे हाथ से छूट कर भाग गयी । मैंने उसे फिर पकड़ा । प्रीतो का अंगूठा दर्द करने लग गया । दूध की धार नहीं फूटी । मेरी कोशिश भी निहफल (आकार्थ) गयी ।

तभी कीमू कहीं से निकल कर हमारे सिर पर पहुंच गया था । उसने हमें पकड़ा । दो-दो थप्पड़ दिये । प्रीतो रोने लगी । पर मैं मुंह बिसूर कर कीमू को माँ-बहन की गाली देने लगा । कीमू हमें पकड़ कर घर ले आया । मां ने उस के सामने ही मेरी गाल पर एक करारा तमाँचा दिया । प्रीतो से कुछ नहीं कहा । वह हड़बड़ाई सी खड़ी की खड़ी रह गयी । मार मुझे पड़ी । कुलबुला वह उठी ।

माँ ने मुझे मारा जरूर था; लेकिन कीमू के चले जाने के पश्चात वह हम दोनों को बड़े दालान में ले आयी थी । हमें घी-शक्कर की चूरी खिलाई थी । क्षण भर में मार का सारा कड़वापन घी-शक्कर की मिठास में ऐसे घुल कर बह गया था कि माँ ने कोई जादू फूंक दिया हो ।

कात्तिक का महीना भी आया । और बीत गया । इस बार गाँव के बहुत से खेत ऊसर पड़े रह गये, उनमें बुआई नहीं हुई । गांव के सब जवान भरत्ती होकर लड़ाई में चले गये थे । कोई बिरला बचा रह गया था । हमारे खेत प्रीतो के ननिहाल वाले जोतते थे । खेत में काम के लिए आदमी नहीं मिलते थे, तो इस बार माँ ने मुझे कहा : "बेटा ! प्रीतो के नाना की सहायता किए बिना अब गुजर नहीं होगी । मेरे लाल को उनका हाथ बंटाना ही पड़ेगा ।"—और मैं खेतों में काम करने लगा था । प्रीतो का नाना मेरा खुद ख्याल रखता । और जब मैं जरा कोई टेढ़ा या कठिन काम हाथ में ले बैठता, तो वह मुझे टोक देता : "यह काम तेरे बस का नहीं है—स्वर्ण !"—

पहले पहल मेरे हाथों फफोले पड़ गये, किन्तु मैं जल्दी ही काम

का अभ्यस्त हो गया। और धीरे-धीरे काम में मुझे मजा भी आने लगा। प्रीतो और बचपन की याद आती भी; तो इतनी पीड़ामय न लगती। युद्ध की घटनाएं सुनता, तो पहले सा भयभीत न होता।

प्रीतो का नाना अभी कुछ दिन हुए उसकी शादी से लौटा था। वह उसके दूल्हे का बखान करता न थकता था। लम्बा चौड़ा जवान, भरा-पूरा घर। पर मैं उसकी बातों को टालने का प्रयत्न करता। और दिल में कोई हूक सी क्या उठती कि मैं उदास हो उठता, और नाना कभी कभी मुझे काम करने ही न देता। पर मैं कभी पशुओं की नांद में चारा देखता। कभी उनका गोबर उठाता, और मेरे पास कोई काम नहीं भी होता, तो मैं बैलों के सींग खुजलाने लग जाता। बैल खड़े-खड़े जुगाली करते रहते, और कभी कभी वे मेरे हाथों के तलुवे चाटने लग जाते।

लेकिन फिर भी अपने बचपन की प्रीतो को मैं भूल सकने का प्रयत्न करता हुआ भी न भूल पाता।

एक रात गाँव के बाहर मरघट में कुत्तों के रोने की आवाजें उठने लगीं। और तभी खबर कि मिलखी चौकीदार डोंडी पीटता आज फिर सुनाई पड़ा: "हुकुम बादशाह दा! खलखत खुदा दी। सुनो बई ओ... ।"

चौकीदार की आवाज़ मुझे कँपकँपी छेड़ गयी। और मैं हड़बड़ा कर चीखा:

—माँ.........?

माँ मेरी भयभीत आवाज़ को पहचान गयी। और उसने मुझे अपने आँचल में छुपा लिया।

—मँ: ...माँ...इस लड़ाई का अन्त कब होगा—और प्रीतो का दूल्हा गौना लेने मोर्चा से कब लौट आयेगा।

और मां ने अपनी बाहों की पकड़ ढीली नहीं होने दी। एकदम बात पलटते हुए वह बोली:

—लड़ाई का अन्त दूर नहीं मेरे चाँद बेटे ! अब तू जवान निकल आया है। अगले आषाढ़ महीने में तुझे बैलों की जोड़ी खरीद दूंगी और फिर जब तू अपने खेतों में हल चलाया करेगा, तो मैं तेरे लिए भत्ता (सुबह का नाश्ता) लेकर आया करूंगी।—है न मेरे लाल !—

तब मैंने पहली बार जाना कि मेरा बचपन कितना पीछे छट गया था।............

......और विनाशकारी युद्ध मेरे बचपन पर अट्टहास कर रहा था।

पन्द्रह बरस के बाद

उसने काफ़ले के साथ आई उस औरत का नाम और पता पूछा।

—मालती, पिता का नाम केशव चन्द वकील। शहर स्यालकोट।

वह औरत अधेड़ उम्र की रही होगी। उसके चेहरे से उसे अपनी किसी खोई हुई वस्तु का भ्रम होने लगा!

—केशव चन्द वकील.........उसके हाथ से कलम छूट गयी और कितनी देर वह उस औरत की ओर इकटक देखता रह गया। वह झेंप गयी और लज्जा से सिर नवाए पैरों से जमीन पर लकीरें खींचने लग गयी।

—केशव चन्द वकील—मुहल्ला? कौन से मुहल्ला में रहते थे तुम?—सदानन्द ने पूछा।

—नई आबादी।—मालती ने निगाह ऊपर उठाई और सदानन्द की आँखों में गहरे पैठ कर देखा। उसकी आँखों में किसी अन-बूझ बात का भाँवला था।

—नई आबादी! केशव चन्द वकील और मालती। हाँ...मालती।

सदानन्द की आँखों के सम्मुख बीता जमाना तेजी से घूम गया जिसे अब तक समय की धूल ने ढँक रखा था।

सदानन्द, अभी गत वर्ष आजन्म कैद भोगक र छूटा था। चौदह बरस की कैद ने उसका सुडौल, फौलाद सा शरीर रुग्ण बना दिया था। पर उसकी आत्मा अभी जवान थी। पहले वह एक आतंकवादी था, लेकिन अब उसका विश्वास आतंकवाद से एकदम उठ गया था। सरकार की ओर से चलाए जाने वाले कैम्पों के इन्तजाम में हरएक विचार के लोग

अपना योग देते थे। रोज पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों के नाम रजिस्टर्ड किये जाते, और तब कहीं उन्हें केम्प में स्थान मिलता था।

सदानन्द को केम्प में आते ही दफ्तर की ड्यूटी मिल गई थी। वह सारा दिन दफ्तर में बैठकर शरणार्थियों के नाम पते लिखता रहता। उनके कष्टमय जीवन की थाह लेने का प्रयत्न करता हुआ उनसे बातें करता रहता। उसकी बातों से शरणार्थियों के मुरझाये, शोकमय चेहरों पर फिर से जीने की उमंग चमकने लग जाती।

............सदानंद अभी जवानी में पैर रखने लगा था कि उसके घर वालों ने उसे पढ़ाई की ओर से उपराम देख कर एक वर्कशाप में भरती करा दिया था। वहाँ से भी वह भाग गया और आतंकवादियों के एक दल का मेम्बर बन गया था।

एक बार जब उनका एक साथी पकड़ा गया, तो उसे पुलिस के चंगुल से मुक्त कराने के लिए आतंकवादियों ने सदानंद को चुना था। अकेले सदानंद ने पुलिस पर आक्रमण करके अपने साथी के छुड़ा लिया था। फिर उसकी वीरता की धाक सारे आतंकवादियों पर बैठ गयी थी।

फिर वह कई बरस फरार रहा। उसने सारा उत्तर भारत अपने पैरों के नीचे रौंद डाला था।

एक दिन अपने शहर की याद उसे अनायास खींच ले आयी थी। और नई आबादी के एक प्रसिद्ध वकील केशवचंद के यहाँ आकर नौकर हो गया था।

दिन गुजरते गये। वकील केशवचंद ने बहुत देर तक तो अपने नये नौकर की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया था, लेकिन एक बार वे स्तब्ध खड़े रह गये जब कि उन्हों ने सामने लॉन में बैठे मालती और नौकर को किन्हीं गहरी बातों में खोए हुए देखा। मालती के हाथ में कोई किताब देखकर तब उन्हों ने यही निष्कर्ष निकाला था कि वह नौकर

को पढ़ने की चटक लगाना चाहती है। वह अपनी बेटी की इस आदत को जानते थे।

लेकिन वकील साहब को एक बात के लिए अचम्भा जरूर होता था कि सदानंद इतने थोड़े समय में परिवार में कैसे घुल-मिल गया था। एक बार मालती टाईफाईड से बीमार पड़ी तो सदानंद ने कई कई रातें जाग कर अपनी आंखों में बिता दी थीं। और फिर जब मालती बीमारी से उठ बैठी थी, तो सदानंद उसका अपना हो गया। वह भूल गयी थी कि वह उनका घरेलू नौकर है।

एक बार सदानंद के संदेह गुजरा कि वकील साहब के घर पर पुलिस की कड़ी निगाह थी। जब वह घर से बाहर निकलता तो सफेद कपड़ों में घूमते फिरते पुलिस वाले उसे किसी न किसी बहानेबातों में उलझाने का प्रयत्न करते, और टेढ़े-मेढ़े प्रश्नों की भूल भुल्लईयाँ में डाल देते। वह सोचता, हो सकता है कि पुलिस उसी का पीछा कर रही हो, और संतोष-जनक पूछ-ताछ हो जाने पर उसे पकड़ ले जाये। पर उसे यह बात भी मालूम थी कि वकील साहब का छोटा भाई किसी राजनैतिक मामले में लाहौर से पकड़ा जा कर जेल में बंद था।

वकील साहब का संदेह और हैरानी सदानंद के ऐसे घुटे घुटे रहने से और ज्यादा बढ़ गयी। पर फिर भी बात की तैय तक पहुँचने का कभी उन्हें ख्याल ही नही आया।

एक दिन जब सदानंद काम से जलदी निपट गया तो वह अपने कमरे में आकर कोई चीज़ टटोलने लगा। यह एक पिस्तौल था, जो उसने अपने तकिए में बंद कर रखा था। जब उसने देखा कि उसका पिस्तौल गुम है, तो सोचा, उसके कमरे में मालती के सिवाय और दूसरा कोइ आ नहीं सकता। वह कमरे से बाहर निकल आया। वकील साहब और उन की पत्नी किसी पार्टी में गये हुए थे। मालती अकेली कमरे में लेटी हुई

कोई किताब पढ़ रही थी । वह दरवाजे पर दस्तक देकर भीतर चला गया ।

—माली.........एकाँत में वह मालती को इसी नाम से पुकारा करता था ।

—मैं एक बात पूछूँ ?............सदानंद ने मालती का ध्यान किताब से हटाकर अपनी ओर खींच लिया । उसने चेहरे पर परेशानी और घबराहट देखकर मालती सारी बात उसी क्षण समझ गयी ।

—हाँ, यही कहना है न सदा, तेरी कोई चीज.........?

—नहीं, नहीं, मेरा मतलब.........। सदानंद को कोई बात नहीं सूझी ।

मालती ने किताब बंद करके मेज पर रख दी । सदानंद का ध्यान किताब के मोटे मोटे अक्षरों पर जा टिका ।

उसने पढ़ा—"पैरिस कम्यून" फिर उसका ध्यान अपनी असली बात से भटक गया । वह कोई समस्या सुलझाने में लग गया । मालती ऐसी किताबें क्यों पसंद करती है ? उसके पिता भी एक दिन लेनिन भी कोई किताब लिए बैठे थे ! और जब भी वे हिन्दुस्तान के किसी कोने से आतंकवादियों की कोई कार्रवाही पढ़ते हैं तो उन्हें खूब कोसते हैं । भला वे आतंकवादियों के इतने विरुद्ध क्यों हैं ?

मालती ने जब सदानंद का ध्यान किताब पर टिका देखा तो पूछ लिया :

सदा, तू कहाँ तक पढ़ा हुआ है ?

—मुश्किल से दो जमात तक......और......सदानंद ने सहज भाव से उत्तर दिया उसके स्वयं को छिपाने की कोशिश को मालती उसी क्षण भांप गयी थी ।

उसने कहा :

—सदा, यह किताबें तू भी पढ़ा कर। यह सब चोरी से पढ़ी जाती हैं। मेरे चाचा जी के साथी पढ़ने को दे जाते हैं।......

मालती ने दीवार की घड़ी पर निगाह डाली। उसके बाबू जी और माता के लौटने में अभी काफी देर थी। वह सदानन्द के रहस्यमय जीवन को पूरी तरह से पा लेना चाहती थी। आज जब वह उसके कमरे में गयी तो सदानन्द बाजार किसी काम से गया हुआ था। उसने सदानंद के बिखरे पड़े कागजों को टटोलना शुरू कर दिया था। कागजों के एक पुलन्दे में बड़ी होशियारी से लपेट कर रखी एक किताब पड़ी थी। मालती ने किताब का नाम पढ़ा था : "हिन्दुस्तान के आतंकवादियों का इतिहास।" उसने किताब वहीं टिका दी थी। फिर वह किसी गहरी सोच में डूबती उतराती रही थी। अचानक उसका हाथ किसी कड़ी चीज से छू जाने पर उसने देखा, तो एक पिस्तौल था। उसके सारे शरीर में बिजली की सी झनझनाहट फिर गयी थी। पिस्तौल को कहीं छुपाकर कमरे में आकर जाने कितनी देर हक्की बक्की बैठी रही थी।

सदानन्द से उसने पूछ ही लिया :

—सदा तू भी आतंकवादी है क्या ?

मालती आतंकवादियों को घृणा की दृष्टि से देखती है और उसका पिता भी। उसका ऐसे प्रश्न पूछने का और मतलब ही क्या हो सकता है! सदानन्द एक झटके के साथ कुर्सी पर से उठ बैठा। उसकी आँखें लाल हो आयीं, जैसे उनमें कोई गजब का रोष था। मालती की स्थिर और भावपूर्ण आँखों में झाँकते हुए वह बोला :

—मेरे पास इस बात का कोई जवाब नहीं है। मैं अब यहाँ पर नहीं रह सकता। एक पल भर के लिए भी नहीं।

अगली सुबह जब केशवचन्द और मालती ने पत्रों में सदानन्द के गिरफ्तार किए जाने का समाचार पढ़ा था तो स्तब्ध रह गये थे। मालती की आँखें छल-छला उठी थीं।

तत्पश्चात केशवचन्द और मालती सदानन्द का केस सुनने लाहौर जाते रहे थे। केशवचन्द ने अपने कुछ वकील दोस्तों के जरिए से सदानन्द की सहायता भी की थी। सदानन्द ने कई बार पुलिस के मजबूत घेरे से मालती की ओर चितवन से देखा था, और तब तक देखता रहा था, जब तक कि उसके केस का फैसला नहीं हो गया और उसे उम्र भर के लिए जेल में नहीं भेज दिया गया। जेल के लम्बे कष्टमय जीवन में सैंकड़े लोग आये, पर आँखों से एक बार फिसली मालती फिर कभी नहीं लौटी, उसकी धुंधली सी याद हमेशा उसके मन पर छायी रही।

पन्द्रह बरस के बाद वह आयी थी, इतने लम्बे अर्सा के बाद कि उसकी उन बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों के नीचे गढ़हे पढ़ गये थे, और समय के कुचक्र ने उसकी आत्मा तक को कुचल दिया था।

सदानन्द के नदी की भाँति चंचल हो गये हृदय में एक विचार उपज आया कि वह उसे अपने आलिंगन में ले ले। और पन्द्रह बरस पूर्व प्रश्न करती आँखों से कहे :

—मैं अब आतंकवादी नहीं रहा माती......। पर अचानक उसके पैरों को किसी संस्कार के विचार ने बाँध लिया। मालती के होंठ काँप रहे थे। उसकी आवाज अवरुद्ध हो गयी थी। और आँखों से पुरानी यादें पिघल कर बह निकली थीं, किसी तेज पहाड़ी झरने की तरह......

याद

तब देश का विभाजन नहीं हुआ था।........

लाहौर-जेल के बम केस अहाते में लम्बी सजा के राजनैतिक कैदी रखे जाते थे। जरायम-पेशा कैदियों के लिए यह आहाता इसलिए आकर्षण का विषय था कि जिस कैदी को भी मुश्कत्ती बन कर एक बार बम केस अहाते में जाने का अवसर मिला था, उसे जेल की कोई दूसरी जगह पसंद नहीं थी। इस अहाते के कैदियों को विशेष रूप से दूध, अंडे और गोश्त मिलता था। वह अधिकार उनसे पहले यहाँ कैद होकर आने वाले कैदियों ने जान की बाजी लगा कर सरकार से मनवाया था। वे फुरसत के समय वालीबाल, टेनिस और फुटबाल खेलते थे। उनके पास हरेक प्रकार के सांसारिक ज्ञान की पुस्तकें होती थीं। जो भी मुश्कत्ती उनके साथ एक बार रह जाता, उसकी काया पलट हो जाती। कैद से छूटते समय वह अपने साथ बहुत सा ज्ञान और विदेशी शासकों के लिए घृणा के बीज लेकर जाता। फिर उन्हीं जरायम-पेशा कैदियों में से बहुत से राष्ट्रीय आन्दोलन में कैद होकर उस अहाते में लौट आते थे।

बम केस अहाते में छोटे छोटे पौधे खड़े थे जिनमें से कई अब पूरे पेड़ बन चले थे। यह पेड़ हिन्दुस्तान की क्रांतिकारी आंदोलनों के जीते-जागते चिन्ह थे जिन्हें कैदियों ने बोया और फिर अपने-अपने दौर के आंदोलनों के कैदी उन्हें पालते रहे थे। उनमें कुछ रंग-बिरंगे फूल भी थे। इन फूलों के बीज कैदी जेल से छूटने पर अपने साथ ले जाते थे, और जेल-जीवन की याद के रूप में उन्हें अपने घरों के आंगन में बो देते थे।

जोगिन्दर सिंह यूनान से कैदी बन कर यहाँ आया था। उसे राजनैतिक कैदियों के सारे अधिकार प्राप्त थे। जोगिन्दरसिंह को जेल की एकांत में कई बार पिछली यादें बेचैन बना देतीं। इटली, फ्रांस, मिस्र-वह सब जगह युद्ध में गया था। उसे वे सैनिक याद आते, जो युद्ध के मैदान में दम तोड़ देते, और दुश्मन उन्हें इतना मौका भी न देता कि वे अन्तिम समय अपने देश और घर को याद में लाकर मर सकें। फिर वे घायल याद आते : जो छटपटाते रहते, और घावों की असह्य पीड़ा को बड़े जिगरे से झेल जाते। कितनी भयानक कौर डरावनी यादें थीं युद्ध की।

यूनान की एक याद उसे बार बार कुरेदती। ऐसी याद कि जिसने उसका जीवन पलट दिया था। फिर उसी याद में से एक कोमल और प्यारा चेहरा उजागर हो उठता। यह चेहरा एक यूनानी लड़की का था, जो यूनान की लोक-सेना 'ऐलस' की एक सैनिक थी।

ऐलस सेना यूनान के स्वतंत्र-संग्राम के योद्धाओं का एक गुप्त संगठन था।

एक बार क्वाला शहर की पहाड़ियों के पीछे हिन्दुस्तानी सेना का पड़ाव था। चहुँ ओर धुँध फैली हुई थी। हजारों हिन्दुस्तानी सैनिक अपने दिलों में सुदूर देश और घर की सुखद याद लेकर सो गये थे। जोगिन्दरसिंह आज कुछ बेचैन था। वह बैरक के आगे तेजी से घूम रहा था। कल एक गोरे अफसर ने उसे पीटा था, और तभी से उसका लहू उबल रहा था।

उसका दोष क्या था कि उसने अपने देश हिन्दुस्तान को विदेशियों की निगाहों में गिराने वाली एक फिल्म के प्रति सैनिकों को चेताया था। यह फिल्म क्वाला शहर के किसी सिनेमा हाल में प्रदर्शित होने वाली थी।

ऐलस सेना की सहानुभूति हिन्दुस्तानियों के साथ थी। वे छुप कर

हिन्दुस्तानी सैनिकों के पास आते थे और उन्हें कुछ पोस्टर दे जाते थे। एक रात जोगिन्दरसिंह को किसी के कदमों की आहट सुनाई पड़ी। कोई पराया सा लगने वाला आदमी उसकी बैरक में घुस आया था।

—कौन है ?—उसने खिचड़ी सी भाषा में पूछा।

—एक सैनिक !

—कौन सैनिक ?

—जनता की सेना ऐलस का एक सैनिक !

जोगिन्दरसिंह एक झटके के साथ उठा, और उसे एक तरफ ले गया। धुँध के बारीक बादलों के पीछे क्वाला शहर की बत्तियों का प्रकाश आँखें झपका रहा था।

सैनिक ने खामोशी भंग करते हुए कहा—मेरा नाम फलीचा है। मैं मर्द के वेष में एक लड़की हूं। मुझे ऐलस वालों ने तुम्हारे पास भेजा है। हिन्दुस्तान को नीचा दिखाने वाली फिल्म 'गंगादीन' के विरुद्ध हमने कुछ पोस्टर निकाले हैं, और हम हर तरह से तुम्हारा साथ देंगे।

जोगिन्दरसिंह ने ऐसे अद्भुत परदेशी पहले कहीं नहीं देखे थे। वह कई देश घूम आया था, पर किसी परदेसी के सम्पर्क से उसने ऐसा अपना पन कभी महसूस नहीं किया था। यद्यपि वे दोनों बोली की कठिनाई के कारण अपना भाव बड़ी मुश्किल से एक दूसरे को समझा पा रहे थे, पर वे एक दूसरे के हृदय की बात को बूझते थे।

फलीचा अपने थैले से कुछ पोस्टर निकालती हुई बोली :

—आज से हम तुम दोस्त हुए। और एक ही पथ के पथिक !

और फिर जोगिन्दरसिंह ने उसका हाथ जोर से दबा दिया था।

फलीचा धीरे धीरे कदम टिकाती हुई बाहर चली गयी। मेन गेट का गोर्खा सैनिक ऊंघ रहा था। उसने असली रास्ता छोड़ कर एक

दूसरी राह पकड़ ली थी। कुछ आगे निकल जाने पर उसने पीछे घूम कर देखा, समस्त सैनिक छावनी सोई पड़ी थी और सिर्फ एक सैनिक जग रहा था। उसका भोला और मासूम सा लगने वाला चेहरा उसकी आंखों में घूम गया—कितना प्यारा और कितना कोमल! वह उसी के सम्बन्ध में सोचती जा रही थी........और फिर अगली रात! जोगिन्दरसिंह और उसके साथियों का एक्शन सफल रहा था। वे चुप-चाप बैरक में आकर सो गये थे। एक गोरा सारजंट मारा गया, पर फिल्म बंद करनी पड़ी थी। सारी छावनी में दहशत छा गयी थी।

मुजरिमों की गिरफ्तारी के लिए बड़ा भारी इनाम रखा गया। जोगिन्दरसिंह और उसके साथी पकड़े गये।

सैनिक अदालत ने जोगिन्दरसिंह को फाँसी का दण्ड सुना दिया, पर दूसरे दिन क्वाला शहर के गली कूचों में हजारों लोग जोगिन्दरसिंह को बचाने के लिए प्रदर्शन कर रहे थे। इन प्रदर्शनों के पीछे ऐलस वालों का हाथ था। अंत में सैनिक अदालत को अपना निर्णय बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा। फाँसी को आजन्म कैद में बदल दिया गया।

एक गहरी रात गये कांटों की तारों से घिरी सैनिक जेल के पीछे से एक परछाईं रेंगती सी आगे बढ़ी आ रही थी। चौकीदार सतर्क था, फिर भी पैरों की धीमी सी आहट समीप आती गयी।

—मैं हूं.........फलीचा ने मुँह से कपड़ा हटाते हुए कहा।

—तू......यहाँ कैसे?

—बस मैं आ ही गयी हूं!

जोगिन्दरसिंह फलीचा के साहस पर हैरान था। वह फलीचा के चेहरे को निर्निमेष, इकटक देखे जा रहा था।

फलीचा ने खामोशी को तोड़ा:

—बर्फ के पिघल जाने पर ऐलस सेना पहाड़ों से नीचे उतर आयेगी, और तुम्हें छुड़ा ले जाएगी। फिर हम सुदूर पहाड़ों के आंचल में जा

छुपेंगे, जहाँ पर मेरा घर है। फिर हम स्वतन्त्र होंगे......।

जोगिन्दरसिंह का चेहरा एक मंद मुस्कान से खिल उठा। उसने फलीचा का हाथ अपने हाथ में लेकर एक अजीब सा सुख अनुभव किया।

—फिर हम स्वतन्त्र होंगे...। वह सोचता रहा।

चौकीदार ने तेजी से घूमना शुरू कर दिया था, और वह फलीचा को शायद कोई इशारा कर रहा था।

फलीचा ने जोगिन्दरसिंह से फिर जल्दी मिलने का वायदा किया, और वह केम्प जेल की सीमा लांघकर अंधकार में खो गयी।

दूसरे महायुद्ध के बाद भी जोगिन्दरसिंह कई बरस यूनान के कारावास में पड़ा रहा। कई मौसम आये और गुजर गये। बर्फ पिघल-पिघल कर पहाड़ों को ढंक लेती रही, पर फलीचा फिर नहीं ही लौटी।

जोगिन्दरसिंह सोचता : क्वाला की पहाड़ियों से ऐलस सेना के बहुत से सैनिकों को पकड़ कर गोली से उड़ा दिया गया था। उनमें कई युवतियाँ भी थीं। फलीचा भी उन्हीं में होगी। शहीद हो गयी होगी वह ! फलीचा.........